दर्पण

* ओ३म् *

* स जनास इन्द्रः *

ईश्वर - दर्शन

[इन्द्रोपनिषद्]

ऋग्वेद के दूसरे मण्डल के बारहवें सूक्त का विवेचन

लेखक

जगत्कुमार शास्त्री

"साधु सोमतीर्थ"

प्रकाशक

मधुर - प्रकाशन

आर्य समाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

प्रथम वार] मार्च, १९६६ ई० [मूल्य १.५०

प्रकाशक
मधुर - प्रकाशन
आर्य समाज मन्दिर,
सीताराम बाजार, देहली–६

मुख्य - उद्देश्य

सात्विकता - संवर्धक और मानव - जीवन के नव - निर्माण में सहायक साहित्य का प्रकाशन एवं प्रसार मधुर - प्रकाशन का मुख्य - उद्देश्य है। आर्य जनता की साहित्य विषयक मांग को हम सहर्ष पूर्ण करेंगे। आर्य लेखकों की नई पुस्तकों को हम उत्तम रूप में प्रकाशित करेंगे। प्राचीन आर्य साहित्य का सम्पादन, संशोधन और जीर्णोद्धार भी मधुर - प्रकाशन द्वारा होगा।

स्थायी - ग्राहक

नई पुस्तक के प्रकाशित होने पर मधुर - प्रकाशन के स्थायी ग्राहकों को सूचना भेज दी जती है। पुस्तक के मंगवाने या न मंगवाने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। स्थायी - ग्राहकों से कोई शुल्क नहीं लिया जाता। एक पत्र लिखकर आप भी हमारे स्थायी ग्राहकों में सम्मिलित होने की कृपा कीजिये।

राजपाल सिंह शास्त्री, अध्यक्ष - मधुर - प्रकाशन
आर्य समाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली–६

मुद्रक
श्री महामाया प्रिंटर्स,
बाजार सीताराम, दिल्ली–६

आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य दक्षिण हैदराबाद के प्रधान,
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली के
उपप्रधान, सुप्रसिद्ध आर्य नेता,
निडर क्रान्तिकारी
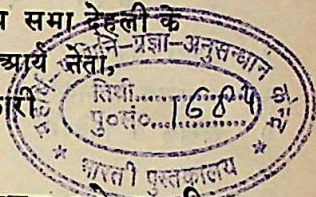
दक्षिण केसरी, श्री पण्डित नरेन्द्र जी

स्वर्गीय श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी सरस्वती के शिष्य और मेरे प्यारे गुरु - भाई हैं। वे एक उत्तम वक्ता, सुयोग्य लेखक और महान् संगठन - कर्त्ता हैं। वे बाल ब्रह्मचारी हैं। हैदराबाद की क्रूर निजामशाही को धूल में मिलाने वाले प्रतापी जन - नायक वे ही हैं। उनका यौवन और अधिकांश जीवन निजामशाही की महाभयंकर जेलों में बीता है। पंजाब का हिन्दी - सत्याग्रह - संग्राम उन के कुशल नेतृत्व में ही लड़ा गया था। दक्षिण भारत में आर्य समाज के एक मात्र ज्योतिःस्तम्भ वे ही हैं। अपने मार्ग की सभी बाधाओं को पछाड़ कर, उन्होंने उज्ज्वल यश प्राप्त किया है। हैदराबाद के धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक और शैक्षणिक जीवन के प्रधान सूत्र-धार वे ही हैं। उन के इशारे पर मर मिटने वाले नवयुवकों की एक बड़ी संख्या अनुशासन-बद्ध होकर चुपचाप अत्यन्त महत्वपूर्ण सेवा कर रही है।

मैं अपनी ईश्वर-भक्ति विषयक यह नई पुस्तक 'ईश्वर-दर्शन' वा 'इन्द्रोपनिषद्' उनके कर-कमलों में ही सौंपता हूँ।

आर्य समाज,
सीताराम बाजार, देहली-६
२६-१-६६ ई०

जगत्कुमार शास्त्री
'साधु सोमतीर्थ'

ईश्वर-दर्शन का अनुक्रमः

ईश्वर - दर्शन

लेखक—श्री पण्डित जगदीशप्रसाद जी एम. ए. [संस्कृत-हिन्दी]
शास्त्री, विद्याभास्कर, डी. ए. वी. हायर सैकेण्डरी-स्कूल, नई देहली

ईश्वरवाद और ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना सभी आस्तिकों को अत्यन्त प्रिय हैं। वेदों का तो मुख्य प्रतिपाद्य ही ईश्वरवाद है। सभी वेदमन्त्र प्रसंगानुसार विभिन्न अर्थों के प्रतिपादक होने के साथ ही साथ ईश्वर की सत्ता और महत्ता के भी प्रतिपादक हैं।

यह 'ईश्वर - दर्शन' वा 'इन्द्रोपनिषद्' ऋग्वेद के एक 'इन्द्र - सूक्त' की विस्तृत व्याख्या है। मूल - सूक्त में वैदिक ईश्वरवाद का सांगोपांग प्रतिपादन मौजूद है। 'ईश्वर - दर्शन' में मूल - सूक्त के भावों को किंचित् विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है। मैंने इस पुस्तक को मनोयोग-पूर्वक पढ़ा है। मैं इसे पसन्द करता हूँ और इसके निष्कर्षों के साथ पूर्णतया सहमत हूँ। यह 'ईश्वर-दर्शन' सभी दृष्टियों से इस योग्य है कि इसका वारम्वार पाठ और विचार किया जाये। इसके गद्य में पद्य का-सा आनन्द मिलता है। पाठक झूम उठता है।

'ईश्वर - दर्शन' के लेखक सुयोग्य विद्वान् और प्रभावशाली व्याख्यान-दाता हैं। अपनी लेखनी और वाणी पर उन्हें एक समान ही अधिकार है। ऐसा सुयोग बहुत कम देखने में आता है। कुछ वर्षों से माननीय पण्डित जी 'साधु सोमतीर्थ' उपनाम को अपनाकर साधना कर रहे हैं। यह उपनाम उनके आदर्शों, उपलब्धियों और उनकी साधनाओं एवं आकांक्षाओं को पूर्णतया प्रतिध्वनित करता है। माननीय पण्डित जी ने आर्य - संस्थावाद की ओर से सब प्रकार के असहयोग, मित्रों के विश्वास-घात और विरोध, तथा घोर - आर्थिक संकटों के होने पर भी, जो सुन्दर, सात्विक और कल्याणकारी साहित्य, बहुत बड़ी मात्रा में आर्यजनता को प्रदान किया है, उस का पाठ, विचार और प्रसार अत्यन्त वांछनीय है। 'ईश्वर - दर्शन' के प्रकाशन पर लेखक और प्रकाशक दोनों को बधाई।

प्रकाशक के निवेदन

१—यह 'ईश्वर - दर्शन' [इन्द्रोपनिषद्] वैदिक इन्द्रोपासना के उद्धार का एक प्रबल प्रयास है। यह एक नई उपनिषद् - वेदोपनिषद् है। प्रचलित वैदिक और अवैदिक उपनिषदों से यह भिन्न है। यह ऋग्वेद के एक ललित और ईश्वर - स्वरूप - प्रतिपादक सूक्त का क्रमबद्ध व्याख्यान है। शब्द-योजना, शैली और सरलता की दृष्टि से भी यह रचना चमत्कार-पूर्ण है।

२—अल्प काल में ही 'मधुर - प्रकाशन' की ओर से पूज्य पण्डित जगत्कुमार जी शास्त्री उपनाम 'साधु सोमतीर्थ' जी की वैदिक - प्रवचन, उर्मिल-मंगल, मातृ-मन्दिर, वैदिक-प्रार्थना, यम-नियम प्रदीप - पांच पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है। ईश्वर - दर्शन आप के सामने है। एक नई पुस्तक वैदिक - प्रवचन - माधुरी छप रही है। सुयोग्य लेखक की मधुर-प्रकाशन पर जो कृपा है, उस के लिये हम आभारी हैं। उन की और भी कई पुस्तकें हमें प्रकाशनार्थ मिल चुकी हैं।

३—जब पुराने आर्य पुस्तक - प्रकाशक अवैदिक और अश्लील साहित्य का प्रकाशन करके अपने बड़ों के नाम डुबो रहे हैं, तब मधुर-प्रकाशन सात्विक, वैदिक और सुरुचिपूर्ण साहित्य के प्रकाशन का लक्ष्य लेकर कार्य-क्षेत्र में आया है। साहित्य-प्रकाशन का एक बड़ा कार्यक्रम हमारे सामने है। सुप्रसिद्ध विद्वानों के कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ हमें प्रकाशनार्थ मिल चुके हैं। पूर्व प्रकाशित आर्य-साहित्य का उद्धार भी मधुर-प्रकाशन द्वारा होगा। आशा है, आर्य-जनता हमारी सेवा को स्वीकार करेगी।

राजपालसिंह शास्त्री
अध्यक्ष, मधुर-प्रकाशन
आर्य समाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली—६
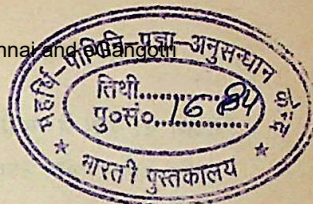
लेखक के निवेदन

१—विविध प्रकार की प्रतीकों और पद्धतियों के सहारे-सहारे ईश्वरोपासना का प्रचलन तो आज भी देखने में आता है; परन्तु वैदिक इन्द्रोपासना का तो विलोप ही हो चुका है। इसी का यह कुफल है कि स्थान-स्थान पर पापों और पापियों के साथ समझौते किये जा रहे हैं। व्यक्ति में, समाज में, राष्ट्र में और विश्व में पाप-प्रताड़क प्रगतियों, उच्चतर प्रेरणाओं और श्रेष्ठतम ऐश्वर्य की कमी हो रही है। यह कमी बढ़ती ही जा रही है, बढ़ती ही जा रही है।

२—इन्द्रोपासना के द्वारा ही प्राचीन आर्यों ने अभ्युदय और निश्रेयस की श्रेष्ठतम सिद्धियां प्राप्त की थीं। इन्द्रोपासना के द्वारा ही उन्होंने अपना सर्वांगपूर्ण विकास किया था। इन्द्रोपासना के द्वारा ही उन्होंने चक्रवर्ती और सर्वहितकारी साम्राज्यों की स्थापनायें की थीं, तथा बढ़ाया था, ससार के सुख-समुदाय को। इन्द्रोपासना के द्वारा ही उन्होंने दुष्ट अनार्यों, अविद्या और अन्धकार के आन्धी-तूफानों, पतनकारी प्रवृत्तियों, तथा अशुभ मनोविकारों को पछाड़ा था। इन्द्रोपासना के द्वारा ही उन्होंने लौकिक और पारलौकिक सम्पदाओं को प्राप्त किया था। अब फिर आवश्यक है कि सभी श्रेष्ठ पुरुष इन्द्रोपासना का अनुष्ठान करें।

३—विद्युत-विज्ञान, सूर्य-विज्ञान, सैनिक-विज्ञान, संगठन-विज्ञान और शिक्षा-विज्ञान की उच्चतर प्रगतियों का समावेश इन्द्रोपासना में ही होता है। प्रकृति-निरीक्षण एवं शरीर और राष्ट्र की रक्षा के कार्य भी इन्द्रोपासना के ही अन्तर्गत हैं; परन्तु इन्द्रोपासना का सर्वोपरि अनुष्ठान, विकास, परिपाक और श्रेष्ठतम लाभ तो ईश्वरोपासना के द्वारा ही सम्पन्न होता है। मानव-जीवन का अन्तिम लक्ष्य है—ईश्वर-दर्शन, और ईश्वर-

दर्शन का वेदों में सर्वाधिक उपदिष्ट उपाय है—इन्द्रोपासना। इन्द्र की स्तुति, प्रार्थना और उपासना ईश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना है।

४—इस पुस्तक के दूसरे प्रवचन में प्रसंगवश 'सौर-मण्डल' का भी संक्षिप्त-सा उल्लेख है। यह उल्लेख श्री छोटु भाई सुथार की नई पुस्तक 'आकाश-दर्शन' के आधार पर किया गया है। 'सौर-मण्डल' के विषय में नये-नये अनुसन्धान हो रहे हैं, चन्द्रमा की सैर की तैयारियां भी हो रही हैं। फिर भी उस असीम की सीमाओं को किसने जाना है? कौन जान सकता है? नये-नये रहस्य प्रकाश में आते जा रहे हैं। कल की स्थापनायें आज अप्रतिष्ठित हो चुकी हैं। आगे-आगे देखिये होता है क्या?

५—इस पुस्तक का प्रकाशन आर्य-जगत् के श्रेष्ठतम साप्ताहिक पत्र 'आर्योदय' में पहिले हो चुका है। इसे पुस्तक रूप में प्रस्तुत करने के लिये श्री पण्डित जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती, सदस्य लोक सभा, श्री पण्डित नरेन्द्र जी हैदराबादी, श्री पण्डित श्यामसुन्दर जी स्नातक, श्री पण्डित मंजूनाथ जी शास्त्री प्रिंसिपल डी० ए० वी० हा० स्कूल अजमेर, समालोचकवर श्री पण्डित राजेन्द्र जी अतरौली और भाई भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार ने विशेष रूप से प्रेरित किया था। श्री पण्डित राजपाल सिंह शास्त्री, बी० ए० साहित्यरत्न तो इसके प्रकाशक ही हैं। इन सभी सज्जनों का बहुत-बहुत धन्यवाद। जब प्रभु की कृपा होती है, तब ऐसा ही होता है।

आर्य समाज मन्दिर	जगत्कुमार शास्त्री
सीताराम बाजार, देहली–६	'साधु सोमतीर्थ'

॥ ओ३म् ॥

—: इन्द्र :—

लेखक—वेदालंकार श्री पं० विद्यासागर जी शास्त्री, एम० ए०
साहित्य - दर्शनाचार्य, पंचतीर्थ ।

१—श्री स्वामी (दयानन्द सरस्वती) जी महाराज ने (इन्द्र) इस शब्द को 'इदि परमैश्वर्ये' से बनाया है । आप लिखते हैं :—

(क) इदि परमैश्वर्ये इस धातु से इन्द्र शब्द की सिद्धि होती है। 'इन्दति परमैश्यर्यवान् यो भवति स इन्द्रः ।' जिसका परमैश्वर्य होय, उस से अधिक किसी का भी ऐश्वर्य न होय उसका नाम इन्द्र है।

[सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ८]

(ख) इदि परमैश्वर्ये इस धातु से 'रन्' प्रत्यय करने से इन्द्र शब्द सिद्ध होता है। 'य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः ।' जो अखिल ऐश्वर्य युक्त है इससे उस परमात्मा का नाम इन्द्र है।

[सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ ६, संस्करण २]

२—उणादि कोष के 'ऋज्रेन्द्राग्रवज्रविप्र' [२।२८] आदि सूत्र की व्याख्या करते हुए आपने लिखा है—

'इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति इति इन्द्रः समर्थोऽन्तरात्मादित्यो योगो वा ।'

यहां भी इन्द्र का अर्थ अन्तरात्मा या भगवान् बताया है। सारांश यह कि ऐश्वर्य की चरम सीमा भगवान् में ही है। अतः वे इन्द्र हैं।

३—निरुक्त में इन्द्र शब्द के १३ निर्वचन दिये हैं, जिनमें से प्रथम आठ निम्न हैं—

१—इरां दृणातीति।	५—इरां दारयते इति।
२—इरां ददातीति।	६—इन्दवे द्रवतीति।
३—इरां दधातीति।	७—एन्दौ रमते इति।
४—इरां धारयते इति।	८—इन्धे भूतानीति।

ये आठ निर्वचन यास्क के अपने हैं तथा आधिभौतिक और आधिदैविक दृष्टि से किये गये हैं। शेष पाँच निर्वचन विभिन्न आचार्यों के हैं। इन निर्वचन-कर्ताओं का दृष्टिकोण सम्भवतः आध्यात्मिक भी रहा होगा। इनमें से प्रथम निर्वचन है—

(१) इदं करोतीत्याग्रायणः। इसलिये निर्वचन का स्वरूप होगा—'इदं सर्वं करोतीतीन्द्रः।' भगवान् सर्वकर्ता हैं ही। उपनिषद् भी कहती है—द्यावा भूमीं जनयन् देव एकः। (श्वेता० ३।३)

(२) (क) इदं दर्शनादित्यौपमन्यवः। औपमन्यव अर्थात् आचार्य उपमन्यु के पुत्र अथवा सम्प्रदायानुयायी कहते हैं—'इदं पश्यतीतीन्द्रः।' आशय यह है कि द्रष्टा होने से भगवान् इन्द्र कहाते हैं। उपनिषत् कहती है—'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति विज्ञाता।' (बृह० ३।७।२३)। 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।' [श्वेता० ६।११]

(ख) यह निर्वचन जीवात्मा परक भी हो सकता है। इन्द्र नाम आत्मा का भी है। आत्मा को इन्द्र क्यों कहते हैं, इस विषय में एक ब्राह्मण-वाक्य है—

'स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यत् इदमदर्शमिति, तस्मात् इन्द्रो नाम, इदन्द्रो ह वै नाम तस्मादिदन्द्रं सन्तम् इन्द्र इत्याचक्षते।'
[ऐ० ब्रा० ३।१३]

इस वाक्य का संक्षिप्त रूप है—'इदं दर्शनात् इन्द्रः।'

(३) इन्दतेर्वा ऐश्वर्यकर्मणः। यह निर्वचन वैयाकरणों का है। इन्दतीति इन्द्रः। ऐश्वर्य की पराकाष्ठा भगवान् में है। इसलिये वे इन्द्र कहलाते हैं।

(४) इन्दन् शत्रूणां दारयिता वा द्रावयिता वा। यह निर्वचन राजा की दृष्टि से किया गया है, ऐसा प्रतीत होता है।

(५) आदरयिता यज्वनाम्। यह निर्वचन याज्ञिकों का है। इसमें पूर्व निर्वचन से 'इन्दन्' शब्द की अनुवृत्ति कर लेनी चाहिये, ऐसा व्याख्याकारों का मत है। तब निर्वचन का स्वरूप होगा—

'इन्दन् आदरयिता यज्वनाम्' तथा शब्दार्थ होगा—

'ऐश्वर्य देकर विधिपूर्वक यज्ञ करने वालों का आदर करने वाला इन्द्र कहाता है।' लौकिक दृष्टि में दान-दक्षिणा देकर याज्ञिकों का आदर करने वाले यजमान इन्द्र हैं। एवं पारमार्थिक दृष्टि से यज्ञ का फल स्वरूप ऐश्वर्य प्रदान करने वाले भगवान् भी इन्द्र हैं ही।

४—इदं सर्वं राति = आदत्ते प्रलये इतीन्द्रः— यह भी एक निर्वचन है।

ईश्वरवाचक इन्द्र पद का प्रयोग

निम्न स्थल पर इन्द्र शब्द ईश्वर का वाचक है—

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्याः, इन्द्रो अपां इन्द्र इत्पर्वतानाम्। इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणां, इन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः॥

[ऋ० १०।८९।१०]

(इन्द्रः) परम शक्तिशाली भगवान् (पृथिव्या दिव ईशे) पृथिवी तथा आकाश का नियमन करने वाले हैं। (इन्द्रः) सर्वद्रष्टा भगवान् (पर्वतानाम् अपामीशे) मेघान्तर्वर्ती जल के भी नियन्ता हैं। (इन्द्रः) संसार की रचना करने वाले भगवान् (वृधामीशे) बड़े से बड़े सूर्य चन्द्रादि लोकों के भी नियामक हैं; क्योंकि उन्होंने ही उनको बनाया है। (इन्द्रः) यज्वा मनुष्यों का आदर करने वाले भगवान (मेधिराणामीशे) यष्टाओं के प्रभु हैं, (योगे क्षेमे) लब्ध लाभ तथा लब्ध की संरक्षा के लिये (इन्द्र इत्) सब ऐश्वर्य के प्रदाता भगवान् ही (हव्यः) पुकारने योग्य हैं।

आशय यह कि सम्पूर्ण स्थावर जंगमात्मक जगत् के अधिष्ठाता तथा रक्षक भगवान् ही हैं और अपने योगक्षेम के लिये हमें भगवान् को ही पुकारना चाहिये।

[श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक, सम्पादक और संचालक—भारतीय-प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान २४। ३१२, रामगंज, अजमेर द्वारा प्रकाशित अष्टोत्तरशतनाममालिका से उद्धृत। धन्यवाद।]

स जनास इन्द्रः
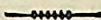
ऋग्वेद के 'स जनास इन्द्रः' सूक्त [ऋ० २।१२।१-१५] का संक्षिप्त-सा विवेचन पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। इस विवेचन को लिखते समय मेरे सामने उस वेद-भक्त समुदाय का चित्र निरन्तर ही उपस्थित रहा है, जो वेद का स्वाध्याय तो करना चाहता है; परन्तु जो वैदिक वाङ्मय में विशेष गति न होने, अथवा अल्प गति होने के कारण, वैदिक शब्द-योजना का भरपूर आनन्द प्राप्त करने में असमर्थ है। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि इस सूक्त का विचार-विस्तार केवल मात्र इतना ही नहीं है, जितना आगे प्रकाशित प्रवचनों में समाविष्ट है। जब स्वाध्यायशील सज्जन इस सूक्त का मनन करेंगे, तब उनको अवश्य ही नया-नया बोध प्राप्त होगा। तब उनको उन वैदिक रहस्यों का परिज्ञान भी प्राप्त होगा, जिनका इन प्रवचनों में विस्तृत उल्लेख नहीं है, या जिनसे यह लेखक अनभिज्ञ है।

इस सूक्त के पन्द्रह मन्त्र हैं। पहिले चौदह मन्त्रों के अन्त में 'स जनास इन्द्रः' ये शब्द आते हैं। यह एक प्रकार से गान की टेक के समान है। टेक गीति-काव्य की शोभावर्धिका होती है। इस टेक के कारण यह सूक्त ही 'स जनास इन्द्रः सूक्त' कहलाता है। इसी प्रकार के टेक वाले सूक्त वेदों में और भी बहुत हैं। इस सूक्त का पन्द्रहवाँ मन्त्र उपसंहार सूचक और प्रार्थनापरक है। यह सारा सूक्त अत्यन्त मधुर-भावों और कर्ण-प्रिय शब्द-योजनाओं से

परिपूर्ण है। अर्थ-विचार पूर्वक इसके गान से वेद-पाठ का अपूर्व आनन्द मिलता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का भाष्य इस सम्पूर्ण सूक्त पर उपलब्ध है। महर्षि जी ने इस सूक्त के कुछ मन्त्रों का व्याख्यान ईश्वर-परक किया है, कुछ का सूर्य-परक, और कुछ का विद्युत-परक। इस सूक्त का क्रमबद्ध व्याख्यान ईश्वर-परक, सूर्य-परक तथा विद्युत-परक भी हो सकता है। महर्षि दयानन्द जी ने सम्भवतः आधिभौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही शैलियों का दिग्दर्शन अपने भाष्य में करा दिया है। यदि हम वैदिकसूक्तों के विचार-प्रसंगों में प्रकरणानुसार ईश्वर से भिन्न प्राप्त अर्थों का ग्रहण करें, तो ऐसा करने में कोई बाधा नहीं है। वेदों के प्रायः सभी उल्लेख द्विवृत्त, त्रिवृत्त अर्थात् दोहरे, तेहरे और इससे भी अधिक सुसंगत अर्थों के प्रकाशक हैं। तथापि वेदों का मुख्य तात्पर्य तो ईश्वर-बोध अथवा ब्रह्म-बोध सूचक ही है। महर्षि दयानन्द लिखते हैं :—

'वेदों में अवयव रूप विषय तो बहुत हैं, परन्तु उनमें से चार मुख्य हैं—(१) एक विज्ञान अर्थात् सब पदार्थों को यथार्थ जानना, (२) दूसरा कर्म, (३) तीसरा उपासना और (४) चौथा ज्ञान है। विज्ञान उसको कहते हैं कि जो कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों से यथावत् उपयोग लेना, और परमेश्वर से लेके तृण पर्यन्त पदार्थों का साक्षाद् बोध का होना, उनसे यथावत् उपयोग का करना। इससे यह विषय इन चारों में भी प्रधान है। क्योंकि इसी में वेदों का मुख्य तात्पर्य है।

महर्षि के संस्कृत लेख के शब्द हैं :—

'तत्रापीश्वरानुभवो मुख्योऽस्ति। कुतः, अत्रैव सर्वेषां

वेदानां तात्पर्यमस्तीश्वरस्य खलु सर्वेभ्यः पदार्थेभ्य प्रधानत्वात् ।'

[ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका—वेद विषय विचार प्रकरण]

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में 'तद्विष्णोः परमं पदं......' इस मन्त्र की व्याख्या में महर्षि दयानन्द लिखते हैं :—

'अतो वेदा विशेषेण तस्यैव प्रतिपादनं कुर्वन्ति ।'

'इस वास्ते वेद विशेष रूप से उसी का [ईश्वर का] प्रतिपादन करते हैं ।'

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में ही वेदान्त-दर्शन के सूत्र [१।१।४] अर्थात् 'तन्तु समन्वयात्' के व्याख्या-प्रसङ्ग में महर्षि जी लिखते हैं :—

'तदेव ब्रह्म सर्वत्र वेद वाक्येषु समन्वितं प्रतिपादितमस्ति । क्वचित् साक्षात् क्वचित् परम्परया च । अतः परमोऽर्थो वेदानां ब्रह्मैवास्ति ।'

'वही ब्रह्म सब वेद-वाक्यों में प्रतिपादित है । कहीं साक्षात् और कहीं परम्परा से । इस वास्ते वेदों का परम अर्थ ब्रह्म ही है ।'

'स जनास इन्द्रः' सूक्त की देवता अर्थात् मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'इन्द्र' है । वेदों में इन्द्र शब्द का प्रयोग सबसे अधिक है । एवमेव इन्द्र देवताक् सूक्त भी सबसे अधिक हैं । सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में ईश्वर के एक सौ नामों के विवेचन-प्रसंग में महर्षि दयानन्द लिखते हैं :—

'(इदि परमैश्वर्ये) इस धातु से 'रन्' प्रत्यय करने से 'इन्द्र' शब्द सिद्ध होता है । 'य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः

परमेश्वरः।' जो अखिल ऐश्वर्य युक्त है, इसी से उस परमात्मा का नाम इन्द्र है।

अपने ऋग्वेद-भाष्य में महर्षि दयानन्द ने 'इन्द्र' शब्द से प्रसंगानुसार विभिन्न अर्थों का ग्रहण किया है। 'वेदार्थ-कोष' में आचार्य चमूपति जी दर्शाते हैं :—

१— अग्नि विद्युत्सूर्य्यो वा (१।१७।५)
२—अध्यापको राजा वा (४।२३।३)
३— ऐश्वर्यमिच्छुः (१।१७३।४)
४—दुःखछेत्ताः (२।३०।३)
५—इन्द्रियवान् जीवः (१।१०१।५)
६—सत्य न्यायधर्ता (४।२६।३)
७—दाता (६।३४।२)
८—परमैश्वर्यवान् सभाशालासेना न्यायाधीशः (१।५१।६)
६—पुरुषार्थी (२।२०।५)
१०—परमैश्वर्यवान् सूर्य इव पिता (४।४८।११)
११—समर्थो राजा (७।३२।१२)
१२—दुःखविदारकः (६।२७।१)
१३—शत्रूणां विदारकः (७।२७।३)
१४—सूर्य इव विपश्चित (२।२०।६)
१५—पूर्ण विद्यो वैद्यः (६।२७।२)
१६—परमेश्वरः सूर्यो वा (६।१८।१२)
१७—स्तोतुमर्ह दातः (१।१०।४)
१८—सर्वार्थस्य सुखस्य धर्तः (६।४७।१०)
१६—ऐश्वर्येण सुखप्रद (३।३७।११)
२०—परमैश्वर्य युक्त सम्राट् (१।१६७।१)
२१—वीराणां रक्षक (१।१०२।५)

२२—दारयिता सूर्य्यः (२ । १२ । १)

२३—परमैश्वर्य प्रद (२ । १२ । १५)

श्री यास्काचार्य ने [निरुक्त १० १ । ६] इन्द्र का यह व्याख्यान किया है :—

(१) इरां दृणाति—जो अन्न को, जल को, बीज को फोड़ता है।

(२) इरां ददाति—जो अन्न वा जल को देता है।

(३) इरां दधाति—जो अन्न का वा जल का धारण करता है।

(४) इरां दारयते—जो अन्न वा जल का विदारण करता है।

(५) इरां धारयते—जो अन्न वा जल का धारण करता है।

(६) इन्दवे द्रवति—जो इन्दु = चन्द्रमा के लिये द्रव रूप होता है। रस निष्पन्न करता है।

(७) इन्दौ रमते—जो जल या रस में रमता है।

(८) इन्धे भूतानि—जो भूतों को प्रकाशित करता है, उजाला करता है, तेजस्वी करता है।

(९) प्राणैः समन्धन—प्राणों से जिसका दीपन होता है। प्राणों से जो प्रकाशित होता है।

(१०) इदं करोति—इस जगत् को जो निर्माण करता है।

(११) इदं पश्यति—इस विश्व को जो देखता है।

(१२) इन्दति-इति-इन्द्रः—परमैश्वर्य से जो सम्पन्न होता है।

(१३) इन्द्रन् शत्रूणां दारयिता—शत्रुओं को विदारण करने वाला।

(१४) इन्द्रन् शत्रूणां द्रावययिता—शत्रुओं को जो भगा देता है।

(१५) यज्वनां आदरयिता—याजकों का आदर करने वाला।

वेदों में प्राकृतिक शक्तियों अथवा आत्मा और परमात्मा विषयक जो अनेक विध आलंकारिक वर्णन हैं, यथा इन्द्र और वृत्र का युद्ध, इन्द्र द्वारा पणियों का निरोध, देवासुर-संग्राम, दस्यु दलों द्वारा देवों की गौओं का अपहरण और इन्द्र तथा उसके अनुचरों द्वारा गौओं की पुनर्प्राप्ति, आदि। इन उल्लेखों को देख कर साधारणतया ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ये विशेष व्यक्तियों वा जातियों के पारस्परिक युद्धों के ऐतिहासिक विवरण हैं। मध्य-युग के सभी वेद-भाष्यकारों को इसी भ्रान्ति ने जकड़ लिया था। इसीलिये वे बड़े-बड़े यत्न करके भी वेदों के यथार्थ रूप को प्रगट नहीं कर सके। पुराणों में इन्द्र विषयक जिन कथाओं का उल्लेख है, उनका वेदों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इंद्र विषयक कई पौराणिक गाथाओं का वास्तविक रहस्य महर्षि दयानन्द जी ने अपने 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' नामक ग्रंथ के—ग्रंथ प्रमाण्याप्रामाण्य विषयक प्रकरण में दर्शाया है।

जैसे ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव अनन्त हैं, वैसे ही ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव के सूचक नाम भी अनन्त हैं। वेदों में अग्नि, सोम, रुद्र, इन्द्र, प्रजापति, बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति, मरुत, यम, वायु, शुक्र, ब्रह्म आदि बहुत से नामों का उल्लेख एक ही ईश्वर के लिये किया गया है। विभिन्न नामों को देखकर कोई बहुदेववाद की कल्पनाओं को वेदों के साथ न जोड़े। इस विषय में बहुत से प्रमाण मौजूद हैं। यजु० ३२।१, ऋ० १।१६४।४६, यजु० ३६।६, और ऋ० २।१।३ विशेष रूप से देखने योग्य हैं। उपासक लोग एक ही सनातन सत्ता को विभिन्न नामों से पुकारते हैं। नाम - भेद तो है; परन्तु वस्तु - भेद नहीं है। वेद ने यह उलझन स्वयं ही सुलझा दी है।

तीन कहानियाँ

श्री पण्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय अपने 'सायण और दयानन्द' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं :—

'इस (ऋ० २।१२) सूक्त का इतिहास बृहद्देवता में इस प्रकार दिया है :—कि इन्द्र ने तप करके अपने विशाल शरीर को द्यौ, अन्तरिक्ष और इस लोक में प्रदर्शित किया। 'यह इन्द्र है' ऐसा जानकर 'धुनि' और 'चुमुरि' नामक दो भयानक असुर शस्त्र लिये उसे मारने के लिये टूट पड़े। ऋषि गृत्समद ने उनके पाप के विचारों को जानकर इस सूक्त द्वारा इन्द्र की कीर्ति का गान किया।'

'कुछ लोग दूसरी कहानी बताते हैं। पहले कभी वैन्य के यज्ञ में इन्द्र आदि गये। गृत्समद ऋषि भी उस सभा में जा बैठे। इन्द्र को मारने की इच्छा से दैत्य भी वहां पहुँच गये। उनको देखकर इन्द्र गृत्समद का रूप धरकर सभा से निकल गया। वैन्य ने जब गृत्समद का सत्कार कर लिया, तो गृत्सम[illegible] वहाँ से चल पड़ा। दैत्यों ने समझा कि यही इन्द्र है और उसको घेर लिया। गृत्समद ने इस सूक्त में यह दिखाया है कि हे दैत्यो! मैं तो तुच्छ हूँ, इन्द्र में तो बहुत से गुण हैं।'

'एक और कहानी भी कही जाती है। गृत्समद के यज्ञ में इन्द्र गया। असुरों को मालूम हो गया। उन्होंने घेरा डाल लिया। इन्द्र गृत्समद का रूप रखकर यज्ञ-सभा से निकलकर स्वर्ग को चला गया। असुरों ने सोचा कि बहुत देर हो गई इन्द्र अभी निकला नहीं। वे भीतर घुस गये और देखा कि गृत्समद बैठा है। उन्होंने कहा कि यही इन्द्र है और हमारे डर से गृत्समद का रूप

बनकर बैठा है। गृत्समद ने यह सूक्त उसी के निराकरण के लिये रचा है। महाभारत में यह कथा है।'

'ये तीन कहानियां हैं। ऐसी अन्य कहानियाँ भी गढ़ी जा सकती हैं। आश्चर्य यह है कि सायण ने इनको भाष्य का आधार बनाकर अपनी वेदों के प्रति मान्यता का घोर खण्डन कर दिया। इस से इन्द्र का क्या गौरव बढ़ा? और वेदों का क्या? यदि सायण स्वतन्त्र रूप से सूक्त का अर्थ करते, तो वेदों का गौरव कहीं बढ़ जाता, क्योंकि जहां तक शब्दों का सम्बन्ध है, सायण सच्चाई से इतने दूर नहीं हैं।'

श्री उपाध्याय जी आगे लिखते हैं :—

'सायण के साथ विनियोग का बन्धन भी लगा हुआ है। अर्थात् निष्कैवल्य-संसव में यह सूक्त पढ़ा जावे। स्वामी दयानन्द इन दोनों (इतिहास और विनियोग) बन्धनों को वेद-मर्यादा का विरोध समझते हैं।'

'सायण ने 'इन्द्र' का अर्थ देवता विशेष किया है, जो असुरों से डरकर भेष बदलकर भागता फिरता है। स्वामी दयानन्द ने 'ईश्वर' किया है। इस सूक्त के कुछ मन्त्रों में 'इन्द्र' का अर्थ सूर्य भी किया गया। उसका प्रयोजन केवल यही प्रतीत होता है कि वेद मन्त्रों के अर्थ आधिभौतिक भी हो सकते हैं और आध्यात्मिक भी। जिनमें सूर्य अर्थ किया गया है, वहां 'परमेश्वर' अर्थ भी ठीक बैठ सकता था। यह दो प्रकार के अर्थ तो सायण को भी सम्मत हैं। परन्तु पौराणिक दन्तकथाओं के प्रभाव में सायण को अन्यथा करना पड़ा।'

[सायण और दयानन्द पृष्ठ ८० - ८३]

हमने इस सूक्त के सभी मन्त्रों में सर्व प्रधान ईश्वर-अर्थ का ही ग्रहण किया है। इस सूक्त का विचार 'इन्द्रोपनिषद्' के रूप में कर्तव्य है। ईश्वरोपासना और इन्द्रोपासना में कोई तात्विक भेद नहीं है। प्रार्थना है:—

त्वया-इत्-इन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः। त्वमस्माकं तव स्मसि ॥

[ऋ० ८। ९२। ३२]

हे इन्द्र ! तुझ से युक्त होकर ही हम जीवन के कठिन-प्रसंगों में दृढ़तापूर्वक उत्तर देने, अर्थात् व्यवहार करने में समर्थ होते हैं। तू हमारा है, हम तेरे हैं।

जब अपरोक्षानुभूति का आस्वाद मिलता है, तब पात्रात्मा मुखरित होकर पुकार उठता है—

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूर-मिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥

[ऋ० ६। ४७। ११]

सब के त्राता, सब के रक्षक, जीवन के प्रत्येक संघर्ष में विजय प्रदान करने वाले, शूरवीर, शुद्धस्वरूप, सनातन एवं सर्वप्रकाशक, सर्व ऐश्वर्य के स्वामी, सर्वोपरिसत्तासम्पन्न महाप्रभु इन्द्र की मैं स्तुति करता हूँ। वह पाप-विनाशक प्रभु हमें सब प्रकार का कल्याण प्रदान करे।

इन्द्र प्रशासक है। पापियों के साथ समझौते करके उसका काम नहीं चल सकता। इन्द्र के उपासक भी पापों और पापियों के

साथ समझौते नहीं किया करते। देखिये श्रुति के शब्दों में एक उपासक कैसे तीखे स्वर में बोल रहा है—

इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि। वृश्चामि तं कुलिशेन वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥

[अथर्व० २ । १२ । ३]

हे सकल ऐश्वर्य के स्वामिन्! हे आनन्द की रक्षा और वृद्धि करने वाले! जो कुछ मैं निवेदन करता हूं, इसको सुन। मैं अत्यन्त संतप्त होकर तेरे पास आया हूँ। जो कोई भी मेरे मन को मारने का यत्न करेगा = मुझे दबायेगा और सतायेगा, मेरे मन को आघात पहुँचायेगा, मैं उसको उसी प्रकार काट डालूंगा, जैसे कि कुल्हाड़े से कोई वृक्ष काटा जाता है।

इन्द्र के स्वरूप का वर्णन है—

इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद स हि जिष्णुः पथिकृत्सूर्याय। आन्मेनां कृण्वन्नच्युतो भुवद्गोः पतिर्दिवः सनजा अप्रतीतः ॥

[ऋ० १० । १११ । ३]

भक्त की टेर को तो भगवान ही सुनता है। वह विजयशील ही सूर्य के लिये मार्ग बनाता है, और सूर्य को नियमपूर्वक चलाता है। वह एक, अखण्ड और निर्विकार परमेश्वर ही पृथिवी-लोक, द्यु-लोक, अन्तरिक्ष-लोक और वेद-विद्या का प्रकाशक है। वही इस अखिल ब्रह्माण्ड का रचयिता है। वह इन्द्रियों की पहुंच से परे है। उसका कोई भी प्रतिनिधि नहीं है।

पौराणिक इन्द्र

१—वैदिक-इन्द्र का प्रतिपादन हो चुका। अब अत्यन्त संक्षेप से पौराणिक-इन्द्र का स्वरूप दर्शाते हैं। पौराणिक-इन्द्र की छोटी-बड़ी अनेक-विध कथायें पौराणिक-ग्रन्थों, पुराणों और रामायण एवं महाभारत में भरी पड़ी हैं। पौराणिक-इन्द्र की बहुत-सी दन्त कथायें भी प्रचलित हैं। स्थिति यह बन चुकी है कि 'इन्द्र' पद के उच्चारण और श्रवण मात्र से ही पौराणिक-इन्द्र की स्मृति हो आती है और इन्द्र विषयक पौराणिक-कथायें चलचित्रवत् जन-मानस में दौड़ने लगती हैं। पौराणिक इन्द्र की कहानियों और रूपरेखाओं का प्रचार इतना अधिक हो चुका है कि उनको हटाना, झुठलाना और उनके विषैले प्रभाव को दूर करना अत्यन्त कठिन है।

२—वेदों के मध्य-युग के भाष्यकारों ने, विशेष रूप से सायण, महिधर और उव्वट प्रभृति ने एवं इनके भाष्यों के आधार पर अपने वेद-भाष्यों और ग्रन्थों की रचना करने वाले विलसन, मैक्समूलर, मैकडानल, ग्रिफथ, कीथ, ह्विटनी प्रभृति विदेशी विद्वानों ने और इन विदेशियों के अनुगामी भारत के आधुनिक विद्वानों ने भी यह दर्शाया है कि पौराणिक-साहित्य में इन्द्र का जो रूप है, उसका बीजांश वेदों में भी है। यह दुराग्रह मात्र ही है।

३—इन तथाकथित भाष्यकारों और लेखकों को वेदों में पौराणिक इन्द्र की गाथाओं को, और तद्वत् ही अन्य पौराणिक गाथाओं को भी, सिद्ध करने में जहाँ-जहाँ कठिनाई है, वहाँ-वहाँ

ब्राह्मण ग्रन्थों के आलंकारिक उल्लेखों को तोड़-मरोड़ करके जोड़ दिया गया है। भारत के याज्ञिकों, मीमांसकों और विनियोग-वादियों का भी यही हाल है। इस भ्रान्ति पूर्ण प्रचार तथा विपुल साहित्य-निर्माण के कारण 'इन्द्र' का विशुद्ध वैदिक स्वरूप लुप्त सा हो गया। न जाने कब ? और कैसे ? पुनरपि उसका उद्धार होगा। इस के लिये जब निरन्तर ही कोई प्रबल आंदोलन चलेगा, तभी कुछ सफलता हो सकेगी। साधारण प्रयत्नों से तो काम न चलेगा। इस प्रकार के आंदोलन की रूप-रेखा और दिशा तो महर्षि दयानन्द सरस्वती ने निर्धारित कर ही दी है। अब पौराणिक मिथ्यावादों के कलंक से वेदों को मुक्त करने-कराने का यश कौन प्राप्त करेगा ? यह भविष्य के गर्भ में है। पौराणिक-गाथावाद और देवतावाद वेदों में नहीं है। फिर भी आजकल के तथाकथित वेदज्ञ इसे स्वीकारते नहीं।

४—बहुत से लोग इतिहास ग्रन्थों को भी काल्पनिक-इतिहास समझकर पढ़ते हैं। यथा श्री गाँधी जी रामायण और माहभारत के राम और कृष्ण आदि को काल्पनिक और औपन्यासिक लिख गये हैं। इसके विपरीत बहुत से लोग उपन्यासों को भी शुद्ध और सत्य इतिहास मानते हैं। पौराणिक-ग्रन्थों की बातों को भी भारतीय जनमानस ने इतिहास-वत् ही मान रखा है। विदेशी लेखकों ने भी इसी मिथ्या-मन्तव्य को पुष्ट किया है। इस प्रकार से बहुत से काल्पनिक और आलंकारिक उल्लेख इतिहास बन गये हैं।

५—पौराणिक-इन्द्र के पिता का नाम प्रजापति है। माता का नाम निष्ठिग्री है। कोई-कोई माता का नाम एकाष्टका और पिता का नाम निष्ठिग्री भी बताते हैं। यह पक्ष पुराणानुमोदित नहीं है। एक वेद मन्त्र [ऋ० १०।१०१।१२] में निष्ठिग्रय पुत्रम्' ये शब्द आते हैं। पौराणिक भाव ग्रस्त जन इनका अर्थ 'निष्ठिग्री का पुत्र' ऐसा

करते हैं। इन शब्दों का वास्तविक अर्थ है जो अपने उच्च विचार और चरित्र के आधार पर अगवा बना है, वह पवित्रता प्रसारक और त्राणकर्त्ता। [निष्ठया + अग्र + यः। पुत्र = पवित्रता प्रसारक तारक] यह एक सामान्य शुभकर्मी मनुष्य का ही वर्णन है, किसी व्यक्ति विशेष का उल्लेख नहीं। कहते हैं कि इन्द्र को उसकी माता ने एक हजार वर्ष तक अपने गर्भ में रखा था। इन्द्र की पत्नी का नाम शची है। उसके पुत्र का नाम जयन्त है। उसके हाथी का नाम ऐरावत है। उसके घोड़े का नाम उच्चैश्रवा है। उसकी राजधानी का नाम अमरावती है। उसके उद्यान का नाम नन्दन है; जिसमें सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला कल्प-वृक्ष है। इन्द्र के महल का नाम वैजयन्त है। महाभारत के अनुसार कुन्ती ने इन्द्र से नियोग करके अर्जुन नामक वीर पुत्र को प्राप्त किया था। रामायण का बाली भी इन्द्र का ही पुत्र था। विमान में आकाश-मार्ग से जाते समय बाली की माता के सौंदर्य को देखकर इन्द्र मोहित हो गया। फलतः महाबली बाली जन्मा।

६—पहिले कभी इन्द्र की पूजा होती थी। फिर वह बन्द हो गई। देवताओं का राजा होने पर भी, अन्य पौराणिक देवताओं-देवियों के समान अब इन्द्र की पूजा कहीं भी नहीं होती। क्योंकि पौराणिक इन्द्र बहुत अधिक छली, कपटी, भ्रष्टाचारी, ईर्षालु और व्यभिचारी है। आचार भ्रष्ट होने के कारण इन्द्र कई बार अपने देवराज पद से वंचित भी हो चुका है। इसी कारण से वह अपूज्य और निन्दित भी माना जाता है। पुराणों के अनुसार इन्द्र वर्षा का देवता है।

७—देवों और असुरों के आपस के लड़ाई-झगड़े जब बहुत बढ़ गये और आये दिन देवों की पराजय होने लगी, तब परेशान होकर देव ब्रह्मा जी के पास गये। बोले कि हमें एक ऐसे राजा की

जरूरत है जो हमारी रक्षा करे। ब्रह्मा जी ने देवों को तपस्या करने का परामर्श दिया। देवों ने तपस्या की। तब इन्द्र जन्मा।

८—बड़ा होने पर देवराज पद को प्राप्त करने के लिये इन्द्र ने एक सौ यज्ञ किये। इससे उसकी बहुत प्रसिद्धि हुई। वह 'शतक्रतु' अर्थात् सैंकड़ों यज्ञ करने वाला कहा जाने लगा। शची के साथ इन्द्र का विवाह हो गया। देवताओं ने इन्द्र को अपना राजा बनाया। देवराज पद को प्राप्त करके इन्द्र बहुत अधिक अभिमानी, विषय-लम्पट, धर्म-विमुख, उच्छृंखल, कर्त्तव्यभ्रष्ट और दुराचारी बन गया।

९—एक दिन देवों के गुरु आचार्य बृहस्पति जी देवराज के दरबार में पधारे। इन्द्र रानी शची सहित अपने सिंहासन पर बैठे रहे। उन्होंने गुरु जी को प्रणाम या उनका स्वागत-सत्कार कुछ भी न किया। यह अवज्ञा, उद्दण्डता तथा अपमान होने पर गुरु जी बुरा मानकर लौट गये। बाद में इन्द्र ने अपनी भूल को समझा। अब क्या था ?

१०—इन्द्र के दुर्व्यवहार से खिन्न होकर बृहस्पति जी ने देव-मण्डल का साथ भी छोड़ दिया। अपने जासूसों से असुरों को जब यह संवाद मिला, तब अपने गुरु शुक्राचार्य जी की अनुमति से उन्होंने देवताओं पर चढ़ाई कर दी। इन्द्र के दुर्व्यवहार का फल उसकी प्रजा को भी भोगना पड़ा।

११—पराजित होकर इन्द्र देवों सहित ब्रह्मा जी की शरण में गया। बृहस्पति जी के चले जाने और असुरों से पराजित होने की बातें सुना कर सहायता मांगी।

१२—ब्रह्मा जी ने ब्राह्मण का अपमान करने के कारण पहिले तो इन्द्र को खूब फटकारा फिर रोने-गिड़गिड़ाने पर उन्होंने उसे

सुप्रसिद्ध बम = वज्र-निर्माता त्वष्ट्रा के पुत्र विश्वरूप के पास भेजा। विश्वरूप भी एक कुशल बम-निर्माता था। यह आचार्य बृहस्पति के समान ही महाविद्वान् था, अश्विनी कुमारों का पिता था, इसके तीन सिर थे।

१३—इन्द्र ने खुशामद करके विश्वरूप को मनाया, अपना पुरोहित बनाया और युद्ध में असुरों को हराया।

१४—विश्वरूप के नाना असुर थे। इसलिये विश्वरूप यज्ञ की कुछ भेंट गुप्त रूप में असुरों के पास भी भेज देता था। इन्द्र को जब इस चाल का पता चला, तब क्रोध में उसने विश्वरूप के तीनों सिर काट दिये।

१५—जब विश्वरूप के पिता त्वष्ट्रा को विश्वरूप की मौत का पता चला, तब उसने इन्द्र को मारने के लिये एक यज्ञ रचा। यज्ञ-कुण्ड से एक महा भयंकर दैत्य निकला, जिसका नाम वृत्रासुर था। त्वष्ट्रा ने वृत्र को इन्द्र और देव-मण्डल के नाश का आदेश दिया। वृत्र ने देवताओं पर धावा बोल दिया।

१६—वृत्र का रंग काला और पर्वताकार था। देवता उसे देखकर ही डर के मारे भाग जाते थे। किसी भी अस्त्र-शस्त्र का वृत्र के शरीर पर कुछ भी प्रभाव न होता था। अन्त में घबराये हुए देवताओं को साथ लेकर इन्द्र सहायता के लिये विष्णु की शरण में गया।

१७—विष्णु ने इन्द्र को बताया कि यदि दधीचि ऋषि की हड्डियों का बम बनाकर चलाया जायेगा, तो वृत्र मारा जायेगा। अन्य किसी भी हथियार का कुछ भी प्रभाव उस पर न होगा।

१८—पुराणों के अनुसार महर्षि दधीचि जी वेदों के बहुत बड़े विद्वान् थे। एक बार अश्विनी कुमार वेद पढ़ने के लिये

दधीचि जी के पास गये। व्यस्तता के कारण दधीचि ने उनसे फिर कभी आने को कहा। इन्द्र को इसका पता चला तो जाकर उसने अश्विनी कुमारों को वेद पढ़ाने का निषेध कर दिया। अन्यथा होने पर सिर काटने की धमकी भी दी।

१६—अश्विनी कुमार जब फिर वेद पढ़ने के लिये आये और उन्हें इन्द्र के आदेश और धमकी का पता चला, तब दधीचि का सिर काट कर सुरक्षित रखा, उसके स्थान पर एक घोड़े का सिर काट कर लगा दिया और घोड़े के मुख से वेद पढ़ लिये। सूचना मिलते ही इन्द्र ने जाकर वह घोड़े का सिर काट दिया। अश्विनी कुमार कुशल वैद्य तो थे ही, उन्होंने दधीचि का असली सिर फिर लगा दिया।

२०—विष्णु जी से विदा होकर इन्द्र जी देव-मण्डली सहित दधीचि जी के आश्रम पर पधारे। दधीचि ने सबका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। आने का कारण पूछा, आदेश पालन का वचन दिया।

२१—थोड़े से संकोच के बाद देवताओं ने अपना उद्देश्य बता दिया। योग-विद्या के बल से दधीचि जी ने अपने मांस और हड्डियों को पृथक्-पृथक् करके अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी।

२२—देवताओं ने दधीचि की हड्डियों को विश्वकर्मा के पास पहुँचाया। उसने बम बनाया। इन्द्र ऐरावत पर बैठकर वृत्र से लड़ा। दधीचि की हड्डियों के बम से वृत्र मारा गया।

२३—वृत्रासुर के मरने से इन्द्र की एक चिंता तो मिटी; परन्तु दूसरी चिन्ता ने उसे तुरन्त ही आ घेरा। ब्रह्म-हत्या का पाप उसे लगा। यज्ञ-कुण्ड से पैदा होने के कारण वृत्र ब्राह्मण जो था। ब्रह्म-हत्या ने एक चाण्डाल का रूप धारण करके, इन्द्र का पीछा किया। आगे-

आगे इन्द्र और पीछे-पीछे ब्रह्म-हत्या। भागते-भागते कहीं भी आश्रय न पाकर, इन्द्र मानसरोवर झील में जा छिपा और एक हजार वर्ष तक वहीं दुबका बैठा रहा। इन्द्र की गैरहाजिरी में देवताओं ने प्रसिद्ध धर्मात्मा राजा नहुष को देवेन्द्र पद पर बैठा दिया।

२४—देवेन्द्र बनकर नहुष को भी बहुत अभिमान होगया। एक दिन उसने इन्द्र की रानी शची को भी अपनी पत्नी बनाने के लिये पकड़ लिया। ऋषियों ने इस कृत्य का बुरा मनाया और शाप देकर नहुष को सांप बना दिया। इसी समय ब्रह्म-हत्या ने भी इन्द्र का पीछा छोड़ दिया। भय-मुक्त होकर इन्द्र अपने घर लौटा।

२५—राजा सगर ने यज्ञ रचा। इन्द्र ने जाकर उसके यज्ञ का घोड़ा पकड़ा और उसे वह कपिल मुनि के आश्रम में बाँध आया। सगर के पुत्र घोड़े को खोजते हुए कपिल के आश्रम में गये और सब जलकर मर गये। सगर का यज्ञ अधूरा रह गया। पुराणों के अनुसार सगर के इन पुत्रों की सद्गति के लिये ही भगीरथ गंगा को लाया था।

२६—ब्रह्मा ने अहल्या नाम की एक परम सुन्दर स्त्री रची। इन्द्र और सब देव अहल्या पर मोहित हो गये। ब्रह्मा जी ने गौतम ऋषि के साथ अहल्या का विवाह कर दिया। इन्द्र और देव ताकते रह गये।

२७—इन्द्र ने चन्द्रमा को पटाकर षडयन्त्र रचा। आधी रात के समय चन्द्रमा मुर्गा बनकर गौतम ऋषि के आश्रम के पास 'कुकड़ूं कूं' करने लगा। गौतम ने समझा कि ब्राह्म-मुहूर्त्त हो गया। वे स्नानार्थ गंगा-घाट की ओर चल दिये। इन्द्र गौतम का वेश बनाकर अहल्या की कुटिया में गया। गौतम समझकर अहल्या ने इन्द्र का अपने पति के समान ही स्वागत-सत्कार किया।

२८—गंगा के किनारे पहुँच कर गौतम ने जाना कि अभी तो आधी रात ही है। वे स्नान किये बिना ही लौट आये।

२९—लौटने पर गौतम ने देखा कि इन्द्र अहल्या की कुटिया से निकला है और चन्द्रमा मुर्गा बना खड़ा है। सारे षडयन्त्र के रहस्य को समझकर गौतम ने इन्द्र को शाप दिया कि तेरे शरीर में एक हजार भग बन जायेंगे, क्योंकि तूने भग—सुख की प्राप्ति के लिये ही यह खेल खेला है। प्रवंचिता अहल्या को उन्होंने पाषाण-शिला होने का शाप दिया। चन्द्रमा पर उन्होंने अपना त्रिशूल दे मारा। चन्द्रमा घायल होकर भाग गया। आज भी चन्द्रमा के शरीर पर उस मार के निशान हैं।

३०—इन्द्र और अहल्या ने क्षमा याचना की। गौतम जी ने उनको क्षमा कर दिया। कहा—'शाप का प्रभाव अभी तो न हटेगा, परन्तु जब त्रेता-युग में राम विवाह होगा, तब इन्द्र के एक सहस्र भग एक हजार आँखों के रूप में बदल जायेंगे और जब राम की ठोकर लगेगी, तब वह पाषाण-शिला भी पुनरपि अहल्या बनेगी।' यह कांड सतयुग का है।

३१—त्रेता-युग में राम के चरण स्पर्श से शिला अहल्या बनी। इन्द्र के शरीर में भगों के स्थान पर एक हजार आँखें बन गईं। इस बीच में हजारों वर्ष तक शर्म के मारे इन्द्र एक कुएं में छिपा रहा।

३२—रावण का बेटा मेघनाद बड़ा पराक्रमी था। उसने इन्द्र पर चढ़ाई की। इन्द्र हार गया। मेघनाद ने इन्द्रपुरी को लूटा और वह इन्द्र तथा देवताओं को बन्दी बनाकर ले गया। इन्द्र तथा देव-गण लंका में रावण के घर पर वर्षों तक दास बने रहे। बहुत-से वरदान और बड़ी-बड़ी रिश्वतें देकर उनको छुटकारा मिला।

३३—व्रज-प्रदेश में पहिले इन्द्र-पूजा होती थी। श्री कृष्ण जी ने वह बन्द कर दी और गोवर्धन-पूजा चला दी। नाराज होकर

इन्द्र ने जोरदार वर्षा आरम्भ कर दी। श्री कृष्ण जी ने गोवर्धन पहाड़ को छत्री की तरह हाथ में उठा लिया और सम्पूर्ण व्रज को इन्द्र के वर्षा-प्रकोप से बचा लिया। इन्द्र यहाँ भी हारा।

३४—समुद्र-मन्थन की सुप्रसिद्ध पौराणिक-गाथा के अनुसार अमृत के विभाजन पर देवों और दैत्यों में भयंकर संघर्ष छिड़ गया। इन्द्र के नेतृत्व में दैत्य बड़ी संख्या में मारे गये। दैत्यों की माता दिति सन्तान के शोक से अभिभूत होकर एक दिन अपने पति महर्षि कश्यप से बोली—'आपके देव-पुत्रों ने क्रूरता पूर्वक मेरे पुत्रों की हत्या की है। इस लिये मैं एक ऐसे पुत्र की कामना करती हूँ जो इन्द्र का वध करे।' कश्यप जी ने दिति को छू कर कहा—'एक हजार वर्ष तक पवित्रतापूर्वक तपस्या कर सकेगी, तो तेरी इच्छा पूरी हो जायेगी।'

३५—दिति गर्भवती हुई और जाकर 'कुशलव' नामक बन में तपस्या करने लगी। इन्द्र भी वहां जा पहुँचा और नम्रतापूर्वक अपनी मौसी की सेवा एवं सहायता करने लगा। एक दिन इन्द्र ने दिति को अशुद्धावस्था में देखा। वह झट दिति के पेट में घुस गया और उसने गर्भ के सात टुकड़े कर डाले। यह घटना तब घटी जबकि एक हजार वर्ष पूरे होने में केवल दस वर्ष ही शेष थे। दिति के गर्भ के वे सात टुकड़े ही सात पुत्रों के रूप में जन्मे और मरुत् नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके नाम आवह, प्रवह, संवह, उद्वह, विवह, परिवह और परावह हैं। ये सातों सात स्थान-पाल भी कहलाते हैं। इनके आधीन—छः छः अन्य मरुत् गण हैं। अतः सब मरुत्गण उनंचास परिगणित किये जाते हैं।

३६—गर्भ-विनाश से दिति सन्तप्त तो बहुत हुई थी, परन्तु इन्द्र ने अपनी वाचालता, विदग्धता और चाटुकरिता द्वारा उसे शान्त कर दिया।

३७—इन्द्र के छल, प्रपंच और भ्रष्टाचारों की पौराणिक बातें बहुत हैं। इनमें सत्य-इतिहास कुछ भी नहीं है। लम्पट लोगों ने ही इन पौराणिक-गपोड़ों को रचा है। वेदों और ब्राह्मण-ग्रन्थों के अलंकारों को पौराणिक प्रभाव के कारण, न समझकर और वेदों में इन्द्र-कथाओं के कुछ पात्रों के नामों को देख कर, वेदविरोधियों और अल्पज्ञों ने यह मिथ्या प्रचार किया है कि वेदों में भी पौराणिक इन्द्र के किस्से पाये जाते हैं। लौकिक-इतिहास पौराणिक-गाथावाद और व्यक्ति विशेष वाचक एवं स्थान विशेष वाचक नामों का कुछ भी उल्लेख वेदों में नहीं है। वेदों के सभी नाम सामान्य अर्थों के ही सूचक हैं।

३८—ईश्वरोपासना विषयक इस पुस्तक में पौराणिक-इन्द्र के इस प्रकरण को देखकर कुछ भाई इसे अनावश्यक वा अनुचित समझेंगे। तथापि पौराणिक-इन्द्र का यह अत्यन्त संक्षिप्त उल्लेख यहां इसलिये किया गया है कि पाठक-वृन्द पौराणिक-इन्द्र और वैदिक-इन्द्र, इन दोनों के विषय में भली प्रकार से सोच-विचार और निश्चय कर सकें, तथा वेदों में पौराणिक-इन्द्र के कुत्सित किस्से वतलाने वालों के मिथ्या-प्रचार से भी बच सकें। पौराणिक देव-माला को वैदिक वताना और पौराणिक कहानियों को वेद-मूलक कहना, अनुचित है। इस दुराग्रह का अन्त कीजिये।

मन्त्र-द्रष्टा गृत्समद

'स जनास इन्द्रः' सूक्त का द्रष्टा अर्थात् ऋषि गृत्समद है। देवता अर्थात् विषय इन्द्र है। मन्त्र संख्या १, २, ३, ४, ५, १२, १३, १४ और १५ का छन्द त्रिष्टुप है। मन्त्र संख्या ६, ७, ८, १० और ११ का छन्द त्रिवृत त्रिष्टुप है। एवं मन्त्र संख्या ६ का छन्द भुरिक त्रिष्टुप है। इस सम्पूर्ण सूक्त का स्वर धैवत है। देवता विषयक किंचित् विचार पहिले हो चुका है। विशेष उपयोगी समझ कर ऋषि विषयक-विचार अब कर्त्तव्य है।

ऋषि

महर्षि यास्क अपने प्रसिद्ध शास्त्र निरुक्त में लिखते हैं :—

ऋषिदर्शनात्। स्तोमान्ददर्शेत्यौपमन्यवः। तद्यदेनां-स्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भवभ्यानर्षत् ते ऋषयोऽभवं-स्तदृषीणामृषित्वमिति-विज्ञायते।

[निरुक्त २। ११]

ऋषि शब्द दर्शनार्थक धातु से बना है। आचार्य औपमन्यु का मत है कि जिसने मन्त्रों का दर्शन किया हो, उसे ऋषि कहते हैं। इस विषय में ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा है कि तपस्या करते हुए इन्होंने अपौरुषेय वेद का साक्षात् दर्शन प्राप्त किया था। इसीलिये ये ऋषि कहलाते हैं। यही ऋषियों का ऋषित्व है।

ऋषियों के मन्त्रार्थ-दर्शन एवं वेद-प्रचार का उल्लेख यास्क ने इस प्रकार किया है :—

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः । तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृत-धर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् संप्रादुः ।

[निरुक्त १ । २०]

जिन्होंने धर्म का साक्षात्कार प्राप्त किया, वे ऋषि कहलाये। उन्होंने अपने से अल्पज्ञ मनुष्यों को—जिन्हें धर्म का साक्षात्कार प्राप्त नहीं हुआ था, उपदेश के द्वारा मन्त्र प्रदान किये।

महर्षि दयानन्द जी भी यास्क का समर्थन करते हैं। वे वेदों में ऋषियों के नामोल्लेख में हेतु भी दर्शाते हैं :—

यैरीश्वरध्यानानुग्रहाभ्यां महता प्रयत्नेन मन्त्रार्थस्य प्रकासितत्वात् तत्कृतमहोपकारस्मरणार्थं तन्नामलेखनं प्रति मन्त्रस्योपरि कर्त्तुं यौग्यमस्त्यतः ।

[ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका]

जिन्होंने बहुत परिश्रम से ईश्वर का ध्यान करके, उसकी कृपा से मन्त्रों का अर्थ प्रकाशित किया, उन ऋषियों के महान् उपकार का स्मरण करने के लिये प्रत्येक मन्त्र पर उसके ऋषि के नाम का उल्लेख उचित ही है।

श्री दयानन्द जी अपने कथन को अधिक स्पष्ट करते हैं :—

वेदानामीश्वरोक्तयुमनन्तरं येन येनर्षिणा यस्य यस्य मन्त्रास्यार्थो यथावद्विदितस्तस्मात् तस्य तस्योपरि तत्तद्दृशेनामोल्लेखनं कृतमस्ति ।

[ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका]

ईश्वर द्वारा वेद का उपदेश होने के पश्चात् जिस-जिस ऋषि ने जिस-जिस मन्त्र का अर्थ यथार्थ रूप में विदित किया, उस उस मन्त्र पर उस ऋषि का नाम लिखा गया है।

वेदों के मध्ययुगीन भाष्यकारों के भ्रान्त लेखों से पाश्चात्य देशों के वैदिक विद्वानों को यह भ्रान्ति हुई थी कि ऋषि मन्त्रकर्त्ता थे। पाश्चात्य विद्वानों के अनुगामी भारतीय विद्वानों में भी ऋषियों को मन्त्रकर्त्ता अर्थात् मन्त्र रचयिता लिखने या कहने की परिपाटी पाई जाती है। उनका यह विचार असत्य तो है ही, साथ ही वेदों के गौरव को घटाने वाला भी है। जिन ऋषियों के नाम वेद मन्त्रों के आरम्भ में लिखे गये हैं; वे वेद मन्त्रों के रचयिता नहीं, द्रष्टामात्र थे। यही कारण है कि एक ही मन्त्र, या एक ही सूक्त के एक से अधिक ऋषियों के नामों के उल्लेख भी वेद मन्त्रों एवं सूक्तों के साथ किये जाते हैं।

यहां एक और भी बात विशेष ध्यान देने योग्य है। वह यह कि जिन-जिन ऋषियों वा ऋषिकाओं के नामोल्लेख वेदमन्त्रों के साथ किये गये हैं, वे एक मन्त्र वा कुछ मन्त्रों के ऋषि हैं, अथवा एक या कुछ सूक्तों के ऋषि हैं। परन्तु उनमें से कोई एक भी ऋषि ऐसा नहीं, जो चारों वेदों का एक ही ऋषि हो। इससे सिद्ध होता है कि जिन ऋषियों के नाम जिन-जिन मन्त्रों या सूक्तों पर लिखे जाते हैं, उन-उन मन्त्रों या सूक्तों का साक्षात्कार प्राप्त करने में ही उन-उन ऋषियों ने अपना सम्पूर्ण परिश्रम और जीवन लगा दिया था। ऐसा करके ही उन्होंने मन्त्रों का यथार्थ बोध प्राप्त किया था। प्रश्न हो सकता है कि वे अन्य मन्त्रों या सूक्तों के भी ऋषि क्यों न हुए? उत्तर स्पष्ट है—ऐसा करने के लिये उनके पास समय ही कहां था? उनका पूरा जीवन तो एक छोटे-से वेदांश का साक्षात्कार करने में ही व्यतीत हो गया।

क्या कोई ऐसे ऋषि कभी नहीं हुए जो चारों वेदों के अर्थों को यथार्थ रूप में जानते थे ? जब विभिन्न ऋषियों ने चारों वेदों के अर्थों का साक्षात्कार कर लिया, और अपने-अपने दर्शन के आधार पर संसार में वेद-प्रचार किया, तभी चारों वेदों के जानने वाले विद्वान संसार में हुए। उनको उनकी विभिन्न योग्यताओं वा साधनाओं के आधार पर ऋषि भी कहा जा सकता है; परन्तु उनको नये ऋषि ही कहेंगे। ऐसे तो बहुत-से हो चुके हैं, और आगे भी होंगे। इन नये ऋषियों के विवरण हमें ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषद् आदि इतिहास ग्रन्थों में मिलते हैं। वेद मन्त्रों के साथ तो प्राचीन ऋषियों के नाम ही लिखे जाते हैं, नये ऋषियों के नाम लिखने की परिपाटी नहीं है।

एक रहस्य

जब हम ऋषियों के नामों की निरुक्ति करके देखते हैं, तब नये-नये रहस्य प्रगट होते हैं। हम देखते हैं कि वे नाम और उन नामों के अर्थ, उन-उन भावों के प्रतिबोधक या अभिव्यंजक हैं, जिनका प्रतिपादन उन मन्त्रों वा सूक्तों में सुरक्षित है, जिनका दर्शन उन ऋषियों ने किया था। इसका भाव यह है कि हमें वेद मन्त्रों, वैदिक-सूक्तों या सन्दर्भों में ऋषियों के नामों के संकेत या नाम के अर्थ को सूचित करने वाले शब्द या संकेत मिलते हैं। इससे यह दृढ़ अनुमान है कि अपने-अपने दृष्ट मन्त्रों, वा सूक्तों, वा सन्दर्भों के आधार पर ही ये नाम मन्त्रद्रष्टाओं ने अपना लिये थे, अथवा मन्त्र—द्रष्टाओं के जीवन व्यवहार और उनके द्वारा किये गये वेद प्रचार को देखकर ही विद्वानों ने उन मन्त्र-द्रष्टाओं के ये नाम रख लिये थे।

कुछ ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं, जिनमें मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के नाम ज्यों के त्यों, उनके दृष्ट वेद मन्त्रों में पाये जाते हैं; अथवा उन नामों के अर्थों को बतलाने वाले अन्य शब्द वेदमन्त्रों में मिलते हैं। ऐसे प्रसंगों को देखकर कोई यह कल्पना न करे कि वेदों में विशेष व्यक्तियों अर्थात् ऐतिहासिक पुरुषों के उल्लेख हैं। वेदों के उल्लेख तो सामान्य अर्थों के ही सूचक हैं। हां, यह तो सच है कि वैदिक शब्दों को लेकर ही संसार के सभी पदार्थों, व्यक्तियों, स्थानों और पशु-पक्षियों आदि के नामकरण हुए हैं। कुछ ऋषियों और राजाओं ने भी वेदों के कुछ शब्द अवश्य ही अपने-अपने नाम के रूप में अपना लिये होंगे। नामकरण की जैसी रीति आजकल है, प्राचीन काल में भी ऐसी ही रीति रही होगी। महर्षि मनु ने यही सूचित किया है और वेदों में इतिहास-सूचक उलझन को सुलझा दिया है :—

सर्वेषां तु स नामानि, कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ, पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥

(मनु० १। २१)

उस परमात्मा ने निश्चय करके सब के नाम, कर्म और पृथक्-पृथक् व्यवस्थायें सृष्टि के आदि में वैदिक शब्दों से ही पृथक्-पृथक् निर्मित की हैं। इसका भावार्थ यह है कि सृष्टि के आदि में भगवान् ने ही सब भूतों के गो, अश्व, पुरुष आदि नाम उन-उनकी स्वाभाविक शक्तियों का विचार करके वैदिक शब्दों के द्वारा ही रखे हैं और संसार के सभी नाम आरम्भ में वेदों में से ही ग्रहण किये गये हैं।

शतपथ ब्राह्मण में यजुर्वेद के १३ वें अध्याय के कतिपय

मन्त्रों का व्याख्यान करते हुए प्राण और इन्द्रियों के अर्थों में "वसिष्ठ" आदि शब्दों का उल्लेख किया गया है। यथा :—

१—प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः। [शतपथ ८।१।१।६]

२—मनो वै भरद्वाज ऋषिः। [शतपथ ८।१।१।६]

३—श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः। [शतपथ ८।१।२।६]

४—प्रजापतिर्वै जमदग्निः। [शतपथ १३।२।२।४]

५—चक्षुर्वै जमदग्निः। [शतपथ ८।१।२।३]

६—प्राणो वा अङ्गिरः। [शतपथ ६।१।२।२८]

७—वाग्वै विश्वकर्मा ऋषिः। [शतपथ ८।१।२।६]

ऋषि - नामों का ऐतिहासिक अर्थ करना और द्रष्टा एवं प्रचारक के स्थान पर ऋषियों को वेद - मन्त्रों का कर्त्ता वा रचयिता मानना भ्रान्तिपूर्ण भी है, अनिष्टकारक भी, और वेद के गौरव का विनाशक भी। पाठक ऋषियों अर्थात् मन्त्र - द्रष्टाओं और 'गृत्स-मद' विषयक विचारों को भली प्रकार समझ लें। इसलिये यह थोड़ा-सा प्रासंगिक उल्लेख यहां किया है।

यह पहिले लिखा जा चुका है कि 'स जनास इन्द्रः' सूक्त का ऋषि 'गृत्समंद' है। गृत्समद को गृत्समद क्यों कहते हैं? देखिये :—

गृणाति इति गृत्सः। * माद्यति इति मदः।

जो प्रभु की स्तुति करता है और सदा आनन्द में रहता है, उस विद्वान् उपासक को 'गृत्समद' कहते हैं।

---

* गृणाति अर्चति (निरुक्त ३।१४)

ऐतरेय आरण्यक [२ । २ । १] में 'गृत्समद' का अर्थ प्राण-परक किया गया है :—

'प्राणो वै गृत्सः, अपानो मदः, स यत् प्राणो गृत्सोऽपानोमदः तस्मात् गृत्समद इत्याचक्षते ।'

प्राण ही गृत्स है। अपान मद है। वह प्राण अर्थात् 'गृत्स' और अपान अर्थात् 'मद' ये दोनों मिलकर ही 'गृत्समद' कहलाते हैं। [गृत्समद=प्राण और अपान]

ऐतरेय आरण्यक के इसी प्रकरण में विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ, प्रगाथ आदि प्रसिद्ध नामों को भी प्राण सूचक दर्शाया गया है। लोक में ये सब नाम ऐतिहासिक और विशेष माने जाते हैं; परन्तु ऐतरेय आरण्यक में इन का व्याख्यान यौगिक आधार पर सामान्य नामों के रूप में ही प्रतिपादित है। वेदों में ये सब नाम अपने सामान्य अर्थों में ही आते हैं।

गृत्समद को ही आंगिरस, शौनहोत्र, पश्चाद् भार्गव और शौनिक भी कहा जाता है। ये नाम गृत्समद के गुण, कर्म और स्वभाव को सूचित करते हैं :—

आंगिरस—जिसके अंगों में रस अर्थात् बल है।

शौनहोत्र—दूसरों के सुख के लिये अपने सुख का परित्याग करने वाला।

(शुनं सुखं जुहोति-इति शौनहोत्रः।)

पश्चाद्भार्गव—जिसका अतीत तपस्यापूर्ण है।

शौनकः—क्रियाशील, पुरुषार्थी। (शुन् गतौ)

ऋग्वेद २।४।६ में तथा २।४०।८ में 'गृत्समदासः' शब्द आये हैं। ऋग्वेद २।४१।१८ में 'गृत्समदाः' प्रयोग है। इन

शब्दों के अर्थ महर्षि दयानन्द अपने भाष्य में इस प्रकार दर्शाते हैं :—

१—(गृत्समदासः) गृत्सानां मेधाविनां मद आनन्द इवानन्दो येषान्ते । अर्थात् जिनका आनन्द बुद्धिमानों के आनन्द के समान है ।

२—(गृत्समदासः) गृत्सा अभिकांक्षिता मदा हर्षा यैस्ते । अर्थात् जिन्होंने आनन्द चाहे हुए हैं, वे उपासक ।

३—(गृत्समदाः) गृहीतानन्दाः । अर्थात् जिन्होंने आनन्द को ग्रहण किया है ।

हमने देखा कि यह गृत्समद नाम का विचार भी अत्यन्त बोधप्रद है । 'स जनास इन्द्रः' सूक्त का ऋषि 'गृत्समद' है । वह ईश्वर का भक्त और मस्ती से परिपूर्ण है । वह कोई पवित्र और परोपकारी आत्मा है । वह आस्तिक भाव का प्रचारक भी है और आनन्द का प्रसारक भी । जो कोई भी प्रभु के आनन्द-गीत गायेगा और संसार में सुख की वृद्धि करेगा, वही 'गत्समद' पदवी को प्राप्त कर सकेगा ।

साईं के दरबार में, याचक हैं दो नैन ।
मांगें दर्श - मधूकड़ी, रजे रहें दिन रैन ॥

॥ ओ३म् ॥

ईश्वर – दर्शन

[इन्द्रोपनिषद्]

स जनास इन्द्रः

मूल-सूक्त, ऋ० २ । १२ । १–१५

देवता – इन्द्र ❁ ऋषि – गृत्समद

[१]

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्

देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।

यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां

नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥

[२]

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्
यः पर्वतान् प्रकुपितान् अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो
यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥

[३]

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून्
यो गा उदाजदपधा बलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान
संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥

[४]

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि
यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमादद्
अर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥

[५]

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति
घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति
श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥

[६]

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य
यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः
सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥

[७]

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो
यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान
यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥

[८]

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते
परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद् रथमातस्थिवांसा
नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥

[९]

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो
यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव
यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥

[१०]

यः शश्वतो मह्येनो दधानान्
अमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां
यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥

[११]

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं
चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान
दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥

[१२]

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान्
अवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुः
द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥

[१३]

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते
शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुः
यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥

[१४]

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं
यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो
यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥

[१५]

यः सुन्वते पचते दुध्र आचिद्
वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः
सुवीरासो विदथमा वदेम ॥

[१]

उसको समझो

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्
देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां
नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१॥

पद-पाठ

यः । जातः । एव । प्रथमः । मनस्वान् । देवः । देवान् । क्रतुना । परिऽअभूषत् । यस्य । शुष्मात् । रोदसी इति । अभ्यसेताम् । नृम्णस्य । मह्ना । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

शब्दार्थ :—(यः) जो (जात एव) प्रसिद्ध प्रगट होते ही (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ, सब से मुख्य, और सर्वव्यापक हो जाता है, (मनस्वान्) जो परम मननशील. (देवः) दिव्यशक्तियों से युक्त है, और जिसने (देवान्) दिव्य पदार्थों को, पंच महाभूतों को, विद्वानों को (क्रतुना) दिव्य गुण, कर्म और स्वभाव से (पर्यभूषत्) विभूषित कर रखा है, (यस्य) जिसकी (शुष्मात्) सामर्थ्य से, शक्ति से, आज्ञा से, (रोदसी)

भूगोल और खगोल में विद्यमान सभी पदार्थ (अभ्यसेताम्) अपने-अपने कार्य कर रहे हैं, गति कर रहे हैं, जो (नृम्णस्य) ऐश्वर्य के, सुख के (मह्ना) महत्व से, आनन्द से युक्त है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह ही (इन्द्रः) इन्द्र है। देवों का भी देव, सकल ऐश्वर्यवान्, सर्वगुण-सम्पन्न ईश्वर है।

भावार्थ :—जो कार्यजगत् की उत्पत्ति के होते ही, सब से श्रेष्ठ, मुख्य, प्रसिद्ध, पूर्व से ही वर्तमान एवं सर्व-व्यापक सिद्ध है, जो सब से बढ़कर मननशील और सब दिव्य शक्तियों का भण्डार है, जिसने कार्यजगत् को सौन्दर्य प्रदान किया है, जिसने पंचमहाभूतों को दिव्य-गुणों से युक्त किया है, जिसके वशवर्ती होकर द्युलोक, पृथिवीलोक आदि सभी लोक-लोकान्तर और उन-उन लोकों के सभी पदार्थ एवं प्राणी अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं, जो सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य का स्वामी, और विज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप एवं सर्वशक्तिमान् है, हे मनुष्यो ! उसको ही इन्द्र कहते हैं। वही ईश्वर है। वही हम सब का पालक, पोषक, रक्षक, शासक और उपास्य है।

प्रवचन

परमात्मा का न कोई आरम्भ है, न कोई अन्त। वह तो नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, अजर, अमर अनादि और अनन्त है।

जीवात्मा भी नित्य हैं, और प्रकृति भी नित्य ही है; तथापि परमात्मा की नित्यता से जीवात्माओं और प्रकृति की नित्यता कुछ भिन्न प्रकार की है। जीवात्मा नित्य तो हैं, परन्तु उन को शरीर धारण करके अपने-अपने कर्मों के भोग भोगने होते हैं। अर्थात् जीवात्माओं को सृष्टि के अनादि और अनन्त प्रवाह में बारम्बार जन्म-मरण के चक्कर में आना-जाना होता है। जीवात्मा अनेकों योनियों में घूमते रहते हैं। किसी भी जीवात्मा का विनाश, लय अथवा अत्यन्ताभाव कभी भी नहीं होता। लोक रीति के अनुसार जिसको जन्म वा उत्पत्ति कहते हैं, वह जीवात्मा का किसी योनि में आना और शरीर को धारण करना ही है। जीवात्मा का यह योनि में आगमन अपने कर्मों और ईश्वर की व्यवस्था के आधार पर होता है। इसी प्रकार शरीर से जीवात्मा के वियोग को ही मृत्यु कहा जाता है। ऐसा जन्म-मरण परमात्मा का नहीं होता। वह तो सदा ही एकरस और निर्विकार, अजर, अमर एवं अखण्ड रहता है। स्वरूप से जीवात्मा अणु है और परमात्मा विभु। जो छोटे से भी छोटा हो, उसको अणु कहते हैं। जो बड़े से भी बड़ा अर्थात् सब से बड़ा और सर्वव्यापक हो, उसे विभु कहते हैं।

प्रकृति अपने तात्विक अर्थात् परमाणु-रूप में तो नित्य है, परन्तु कार्य-रूप में नित्य नहीं है। अतः कार्य-रूपा प्रकृति में ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार संयोग और विभाग के परिणाम-स्वरूप अनेक विकार होते हैं। प्रकृति नाना प्रकार के रूप बदलती रहती है। प्रकृति अपने कारणस्वरूप में तो अनादि और अनन्त है; परन्तु अपने कार्य स्वरूप में यह सादि और सान्त है। अर्थात् अपने कार्यरूप में यह बनने और बिगड़ने वाली है। कहना होगा कि यह जड़-जगत् प्रवाह से तो अनादि और अनन्त है; परन्तु

स्वरूप से यह सादि और सान्त है। अनादित्व तो ईश्वर, जीव, और प्रकृति, तीनों का ही सामान्य धर्म है; परन्तु गुण, कर्म और स्वभाव का भारी भेद इन तीनों में ही वर्तमान है। ईश्वर सत्, चित् और आनन्दस्वरूप है। जीवात्मा केवल मात्र सत् और चित् ही है। जीवात्माओं को आनन्द की प्राप्ति ईश्वर की कृपा से होती है। प्रकृति केवल मात्र सत् स्वरूपा है। सत् अर्थात् सत्तावान् होना, ईश्वर, जोव और प्रकृति तीनों का सामान्य है। चेतनता प्रकृति में नहीं है, ईश्वर और जीव केवल दो में ही है। आनन्द प्रकृति में नहीं है, जीव के पास भी नहीं है। ईश्वर आनन्दस्वरूप भी है। अपनी सर्वोपरि सत्ता और महत्ता के आधार पर ईश्वर ही इस जड़ और जंगम-जगत् का सर्वोपरि स्वामी है।

उत्पत्ति और विनाश वाला न होने पर भी, उपलक्षण से ईश्वर की भी उत्पत्ति का उल्लेख एवं कथन होता है। प्रलय-काल में जीवात्मा गण या तो मोक्षावस्था में मगन थे, या सुषुप्ति अवस्था में प्रसुप्त। प्रकृति भी अपने सूक्ष्म-स्वरूप अर्थात् कारण रूप में थी। तब न तो कोई देहधारी प्राणी था, न ही कोई दृश्य-पदार्थ। तब केवल एक ईश्वरीय सत्ता ही अपनी महत्ता सहित वर्तमान थी। परन्तु तब उसकी सत्ता और महत्ता का कोई दूसरा साक्षी वर्तमान न था। ईश्वर स्वयं ही अपना साक्षी था। समय आने पर जब इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई, तब जीवात्माओं ने अपने-अपने कर्मों के अनुसार नाना प्रकार के शरीर धारण किये। प्रकृति नटी भी सुसज्जित होकर अपने नृत्य करने लगी। कार्यजगत् की उस उत्पत्ति के होते ही परमात्मा की दिव्य और सर्वोपरि सत्ता एवं महत्ता को जीवात्माओं ने देखा और अनुभव किया। बस, यह दर्शन और अनुभव ही ईश्वर का जन्म है। जीवात्माओं के सिर श्रद्धा से उस देवाधि देव के सामने झुक गये। इस प्रकार ईश्वर

स्वतः ईश्वर है। एवं श्रेष्ठ, सर्वोपरि, सर्वप्रथम, सर्वप्रधान, और सब की उत्पत्ति तथा स्थिति करने वाला भी वही है। संसार में जो दिव्य और अखण्ड नियम कार्य कर रहे हैं, ईश्वर ही उन सबका नियामक है। यह नियामक के रूप में जो प्रधानता है, वह ईश्वर को सर्गारम्भ से ही प्राप्त है। जीवात्माओं को तो शुभ कर्म करके बड़ा और प्रसिद्ध बनना होता है, परन्तु ईश्वर तो सदा से ही बड़ा और प्रसिद्ध है।

परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। उसकी सर्वज्ञता और शक्तिमत्ता का परिचय संसार का पत्ता-पत्ता और कण-कण दे रहा है। उससे बढ़कर होने की तो कथा ही क्या? कोई दूसरा उसके समान भी नहीं है। उसी ने हम-आप, यह-वह, सब, बनाये हैं। उसी ने ये सब खेल रचाये हैं। उसी ने हजारों-लाखों प्रकार के पदार्थों को नाना प्रकार के रूप और उन-उन के दिव्य, गुण, कर्म, एवं स्वभाव प्रदान करके, अलंकृत किया है। विद्वानों और बड़े लोगों की सब विभूतियाँ उसी की कृपा का प्रसाद हैं। उसी की आज्ञा से चन्द्र, सूर्य, तारे और अनन्त लोकलोकान्तर गति कर रहे हैं। वह इस सृष्टि-शकट का संचालक है। भूगोल और खगोल में कुछ भी उसकी पहुंच के परे नहीं है। कुछ भी उससे छिपा नहीं है, कुछ भी ऐसा नहीं है, जिस पर उसकी महिमा की स्पष्ट छाप अंकित नहीं है। घास का एक छोटा-सा तिनका भी भौतिक विज्ञान के अनेक तत्त्व और रहस्य अपने अन्दर संजोये बैठा है। यह तत्त्व-निरूपण, संयोजन, और रचना-चातुरी उस महिमामय भगवान् को ही तो है। उसको जानो, मानो, समझो। वह इन्द्र है।

[२]

इन्द्र कौन ?

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्
यः पर्वतान् प्रकुपितान् अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो
यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥२॥

पद-पाठ

यः । पृथिवीम् । व्यथमानाम् । अदृंहत् । यः । पर्वतान् । प्रकुपितान् । अरम्णात् । यः । अन्तरिक्षम् । विऽममे । वरीयः । यः । द्याम् । अस्तभ्नात् । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

शब्दार्थ :—(यः) जो (व्यथमानाम्) भ्रमण करती हुई, घूमती हुई (पृथिवीम्) पृथ्वी को (अदृंहत्) दृढ़ करता है, नियमानुसार चलाता है, (यः) जो (प्रकुपितान्) प्रकुपित (पर्वतान्) पर्वतों को (अरम्णात्) शोभा से अलंकृत करता है, (यः) जो (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (वरीयः) बहुत बड़े विस्तार वाला (विममे) बनाता है, (यः) जो

(द्याम्) द्युलोक को (अस्तभ्नात्) बनाकर संचालित करता है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह ही (इन्द्रः) इन्द्र है।

भावार्थ :—जो भ्रमण करने वाली पृथ्वी को दृढ़ता और गति प्रदान करने वाला है, जिसने कुरूप और क्रोधी स्वभाव वाले पर्वतों को सौन्दर्य प्रदान किया है, जिसने अनन्त विस्तार से युक्त अन्तरिक्ष को बनाया है, जो सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि असंख्य ग्रहोपग्रहों और लोक-लोकान्तरों का उत्पादक, संचालक और स्थिति-कर्त्ता है, वही इन्द्र है।

प्रवचन

उस प्रभु की महिमा का कोई वार या पार नहीं। उसकी अनन्त रचनायें हैं और प्रत्येक रचना एक से एक बढ़कर, आश्चर्य-जनक, सुन्दर और अद्भुत है। प्रकार भेद से, रंग भेद से, परिणाम-भेद से, भार भेद से, स्वाद भेद से, गन्ध भेद से; ध्वनि भेद से, और भी बहुत से भेद-प्रभेदों के आधार पर संसार का और संसार के पदार्थों का विश्लेषण एवं वर्गीकरण विद्वानों ने किया तो है; परन्तु कौन कह सकता है कि कार्य पूरा हो चुका है ? अभी तो खोज चल ही रही है। जो कुछ अभी तक जाना जा सका है, वह सदोष और अधूरा-सा ही है। ज्ञान की तुलना में अज्ञान बहुत अधिक है, खोज के परिणामस्वरूप नित्य प्रति नये-नये तत्त्वों, रहस्यों, और उपकरणों के उद्घाटन हो रहे हैं। जो कुछ कल तक सत्य और वास्तविक समझा जाता था, वही आज असत्य और अवास्त-विक हो चुका है।

दार्शनिक सिर धुन रहे हैं और वैज्ञानिक अपनी सम्पूर्ण उपलब्धियों के साथ मतिविभ्रम में फँसे पड़े हैं। ईश्वर की सम्पूर्ण रचनाओं और उनमें निहित सम्पूर्ण रहस्यों को जान लेना अस्मद्-सदृश अल्पगति-मति वाले मानवों के वश में नहीं है। फिर भी तथाकथित वैज्ञानिक, आविष्कारक, पदार्थवादी और शब्द-शास्त्री तत्त्ववेत्ता होने का दम्भ करते हैं, अपने-अपने सामर्थ्य की डींगें मारते हैं, कोई-कोई तो उस इन्द्र की सत्ता से भी इन्कार करते हैं। यह तुच्छसी गति-मति वाला मनुष्य, जिसके साधन भी अत्यन्त सीमित हैं, उस असीम को पकड़ लेना चाहता है। कैसी विचित्र विडम्बना है।

विश्व का सुविस्तृत प्रपंच हमारे सामने फैला पड़ा है। पृथिवी है, यह अन्तरिक्ष है, वह द्युलोक है। पंचतत्त्व के रहस्य हैं, मेघ-मण्डल हैं, आकाश में छिटका हुआ तारा-मण्डल है, हमारा सौर-मण्डल है और इससे भिन्न अन्य सौर-मण्डल भी हैं। हमारे सूर्य से भी बड़े-बड़े दूसरे सूर्य हैं। दूर-दूर की बातों का तो कहना ही क्या है? हमें तो अपनी और अपने पास की भी खबरें नहीं हैं।

यह हमारा भारत है। इसकी लम्बाई लगभग दो हजार मील है, और चौड़ाई लगभग चौदह सौ मील। इसमें लगभग सात लाख गांव हैं। यदि हम पैदल चल कर प्रतिदिन भारत का एक ग्राम देखें, तो इस सम्पूर्ण देश को देखने में दो हजार वर्ष लगेंगे। यह तो केवल भारत की ही बात है। अन्य बहुत से द्वीप और महाद्वीप भी तो इस पृथ्वी पर हैं, महाद्वीपों से भी कई गुने बड़े महासागर हैं। पृथ्वी और सागरों के भीतरी भाग भी हैं। क्या-क्या देखें? कैसे देखें? न समय है, न शक्ति।

भूगोल शब्द पृथ्वी की गोलाई का सूचक है। विषुवत् रेखा पर पृथ्वी की परिधि पच्चीस हजार मील है। यह पृथ्वी अपनी धुरी पर लट्टू की तरह घूमती है। पृथ्वी की यह गति अक्ष-भ्रमण कहलाती है। सम्पूर्ण पृथ्वी का क्षेत्रफल १९,७०,००,००० वर्गमील है। इसमें से ५,२०,००,००० वर्गमील तो भू-भाग है और शेष १४,५०,००,००० वर्गमील जल-भाग है।

पृथ्वी का आकार गोल तो है, परन्तु गेंद-जैसा सुडौल गोल नहीं है। यह नारंगी के समान अपने दोनों ध्रुवों के पास जरा चपटी है। पृथ्वी का विषुवद्वृत्तीय व्यास ७९२७ मील है और व्यास ७९०० मील। ध्रुवीय व्यास विषुवद्वृत्तीय व्यास से १।३०० भाग कम है।

पृथ्वी के ऊपर छः सौ मील की ऊंचाई तक वायुमण्डल का प्रसार है। यह भी पृथिवी लोक का ही भाग है। हमारा निवास वायु के इस सागर के पैंदे में है। वायुमण्डल के उस पार जाने के लिये बहुत बड़े-बड़े आयोजन हो रहे हैं। आश्चर्यजनक सम्भावनायें सामने आई हैं। तथापि सुनिश्चित रूप में कुछ कहना कठिन है। वायुमंडल को चीर कर उसके पार जाने के लिये स्पूतनिक दौड़ रहे हैं। यदि वायुमण्डल के उस पार जाने और वहाँ जीवित रहने की सम्भावना प्रकट होगी, तो शायद किसी दिन मनुष्य वहाँ पहुँच ही जायेगा।

पृथिवी के ऊपर वायु-मण्डल में तो मनुष्य चौदह मील तक चला गया; परन्तु पृथिवी के अन्दर तो वह दो-एक मील से अधिक जा ही नहीं सका। इसका मुख्य कारण पृथिवी की गरमी है। ज्यों-ज्यों हम पृथिवी के अन्दर प्रविष्ट होते हैं, त्यों-त्यों भू-गर्भ की तपन बढ़ती जाती है। प्रत्येक साठ फुट की गहराई पर पृथिवी

का ताप १० फा० बढ़ जाता है। पृथिवी के अन्दर के भागों पर उसके बराबर के भागों का जो दाब होता है, उसका विचार भी करना चाहिये। एक सौ मील की गहराई पर यह दाब प्रत्येक वर्ग इंच पर तीन सौ टन के लगभग होगा।

पृथिवी के जिस स्तर पर हम रहते हैं, उस की मोटाई पचीस मील है। इस स्तर को भू-कवच कहते हैं। यह भू-कवच पृथिवी के भीतर के शिला-आवरण पर पृथिवी की तैरती हुई सी एक तह है। जैसे पारे के ऊपर कंकर तैरता है, वैसे ही शिला-आवरण पर भू-कवच तैरता है। पृथिवी का भार ६६०,००,००,००,००,००,००, ००,००,००० टन है [६६ के ऊपर बीस शून्य]। इतने अधिक भारवाली यह पृथिवी अपनी धुरी पर एक हजार मील प्रति घण्टे की चाल से घूम रही है। इसके साथ ही पृथिवी अपने चाँद को भी अपने साथ घुमा रही है। चन्द्रमा का भार ७,४०,००,००,००, ००,००,००,००,००० टन है [७४ पर अठारह शून्य]। इतने बड़े भार के साथ यह पृथिवी लगभग साढ़े अट्ठारह मील प्रति सैकिंड अर्थात् ६६,६०० मील प्रति घंटे की चाल से सूर्य की प्रदक्षिणा भी कर रही है। सूर्य की एक परिक्रमा पूर्ण करने में पृथिवी को ३६५ दिन और छः घंटे के लगभग समय लगता है। पृथिवी प्रत्येक पदार्थ को अपने केन्द्र की ओर खींचा करती है। पृथिवी का यही बल गुरुत्वाकर्षण बल कहलाता है। इस बल के कारण किसी पदार्थ पर जो खिंचाव पड़ता है, वही उस पदार्थ का वजन कहलाता है।

जैसे चंद्रमा पृथिवी के चारों ओर घूमता है, वैसे ही पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती है। और भी कई पृथिवियाँ हैं, जो सूर्य के चारों ओर घूम रही हैं। उनको ग्रह कहते हैं। ऐसे नौ ग्रह या नौ पृथिवियाँ हैं, जो हमारे सूर्य के चारों ओर घूम रही हैं। उनके नाम हैं—बुध, शुक्र, पृथिवी, मंगल बृहस्पति, शनि, वारुणी

(यूरेनस) वरुण (नेपच्यून) और यम (प्लूटो), इनमें से कुछ ग्रहों के पृथिवी के समान ही एक, या एक से अधिक चन्द्रमा भी हैं। ग्रहों के चन्द्रमा ही ज्योतिष-शास्त्र की भाषा में उपग्रह कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे ग्रह जो अवांतर-ग्रह या मध्य-ग्रह कहलाते हैं, सूर्य के चारों ओर घूम रहे हैं। ग्रह नौ हैं। उपग्रह २७ हैं। पन्द्रह सौ अवान्तर ग्रह हैं। कुछ धूमकेतु और सैंकड़ों उल्कायें भी हैं। ये सभी हमारे सूर्य के इर्द-गिर्द नियमपूर्वक घूम रहे हैं। यह हमारा सौर-परिवार है।

पृथिवी और सूर्य के बीच सवा नौ करोड़ मील का व्यवधान है। इसको ही सवा आठ मिनट का प्रकाश-अन्तर भी कहते हैं। प्रकाश की चाल १,८६,००० मील प्रति सैकिंड है। सूर्य का प्रकाश पृथिवी पर सवा आठ मिनट में पहुँचता है। सूर्य के बाद जो पृथिवी से सबसे समीपतम तारा है, उसकी रोशनी को पृथिवी पर पहुंचने में सवा चार प्रकाश वर्ष लगते हैं। यह अन्तर पृथिवी और सूर्य के अन्तर से २,७१,४००० गुना अधिक है। यह हमारा सूर्य जो एक थाली जैसा दिखाई देता है, यह जलती हुई गैसों का एक बहुत बड़ा गोला है। इसका व्यास ८,६४,४०० मील है। हमारी पृथिवी जैसी तेरह लाख पृथिवियाँ आसानी से सूर्य में समा जायेंगी। सूर्य की जो गरमी पृथिवी को मिलती है, यदि उसका एकत्रित करना और उपयोग में लाना सम्भव हो सके, तो लाखों वर्ष के लिये ईन्धन की समस्या समाप्त हो जायेगी। यह सूर्य अपनी धुरी पर घूम रहा है। और इसके चारोंओर इसका सौर-परिवार घूम रहा है। सूर्य के विषय में और भी रहस्य की बहुत-सी बातें हैं, सूर्य-विज्ञान के अध्ययन से उनको कुछ-कुछ जाना जा सकता है।

चाँद देखने में तो सूर्य जितना ही बड़ा दिखाई देता है, परन्तु यह हमारी पृथिवी से भी छोटा है। चन्द्रमा का व्यास केवल

२१६० मील है। चन्द्रमा पृथिवी से केवल २,३८,००० मील दूर है। चन्द्रमा के फोटो लिये गये हैं। उसके दूसरी ओर ताक-झांक की गई हैं। उस पर राकेट फेंके गये हैं। उसके साथ छेड़-छाड़ चल रही है। चन्द्र-विज्ञान कुछ-कुछ स्पष्ट-सा होने लगा है। चन्द्रमा पृथिवी के पचासवें भाग के बराबर है और यह २३०० मील प्रति घंटे की चाल से पृथिवी के चारों ओर घूम रहा है। पृथिवी की एक प्रदक्षिणा पूरी करने में चन्द्रमा को लगभग २७ दिन और आठ घंटे लग जाते हैं। क्योंकि इस बीच में पृथिवी भी सूर्य की परिक्रमा करती रहती है, अतः उसकी एक परिक्रमा चन्द्रमा लगभग साढ़े उनतीस दिन में पूरी करता है। सूर्य के समान ही चन्द्र-विज्ञान भी अत्यन्त रहस्यपूर्ण है।

चन्द्र, सूर्य और पृथिवी की चालों के आधार पर ही हमारी काल गणना होती है। दिन, रात, महीने और वर्ष बनते हैं। नाना प्रकार के ऋतुओं का पुनरावर्तन होता है। इस सृष्टि-शकट को चलाने में कौन-कौन सी शक्तियाँ अपना-अपना योग-दान कर रही हैं, इस विषय में हम जो कुछ भी जानते हैं, वह कुछ भी नहीं है।

मनुष्य ने खोज तो की है। कुछ बोध मिला भी है। फिर भी इस अखिल विश्व के संचालक और उसकी शक्तियों का विचार करके यही कहना पड़ता है कि—

पड़े भटकते हैं, लाखों पण्डित,
करोड़ों दाना, करोड़ों स्याने।
मगर जो देखा तो बात सच है,
खुदा की बातें खुदा ही जाने॥

सौर-मंडल

"स जनास इन्द्रः"

—सूक्त के १, २, ३, ४, ७, १०, ११, १२, १३, संख्या के मन्त्रों में वेद-विचारकों का ध्यान प्राकृतिक-जगत् और सृष्टि-रचना की ओर विशेष रूप से आकर्षित किया गया है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण के निर्माण और आध्यात्मिक जीवन के अनुष्ठान में प्राकृतिक जगत् का निरीक्षण, प्रकृतिनटी के क्रीड़ा-स्थलों का परिभ्रमण, प्राकृतिक संसार में कार्य करने वाले अटल नियमों का परिज्ञान, प्राकृतिक विकास-क्रम का अवलोकन और कार्य कारण सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप प्राकृतिक जगत् में घटित होने वाली क्रियाओं तथा प्रति-क्रियाओं और प्राणी-संसार पर होने वाले उनके परिणामों का अध्ययन विशेष रूप से लाभदायक होता है। ज्ञान-प्राप्ति के दो श्रेष्ठ मार्ग हैं, एक आर्ष-साहित्य का पठन-पाठन और दूसरा प्रकृति के प्रांगण में विचरते हुए अनुभूतियों का सम्पादन। यही कारण है कि वेद मानव-मन और मस्तिष्क को बारम्बार सृष्टि-विज्ञान को देखने और समझने के लिये प्रेरित करता है।

प्राकृतिक-जगत में विचरण करने से मनुष्य को जो स्वास्थ्य और सौन्दर्य रूपी लाभ प्राप्त होते हैं, वे तो होते ही हैं। छोटे-छोटे लाभ तो कई हैं; परन्तु दो बड़े लाभ प्रकृति-निरीक्षण और सृष्टि-रचना के विचार-विमर्श द्वारा प्राप्त होते हैं। प्रथम लाभ तो यह है

कि मनुष्य उत्तम नियमों को कार्य रूप में परिणत वा घटित होते हुए देख लेता है और उत्तम परिणामों को प्राप्त करने की युक्ति को जान लेता है। पुस्तकों के पठन-पाठन से भी बढ़कर अनुभव-सिद्ध-ज्ञान होता है, अर्थात् वह ज्ञान जो कि मनुष्य की अनुभूति का विषय बनता है और जिसकी सत्यता की साक्षी मनुष्य को अपने ही अन्तरात्मा से प्राप्त होती है। दूसरा बड़ा लाभ यह है कि सृष्टि-रचना-विधान और उनके विकसित स्वरूप के अध्ययन से मनुष्य में विनम्रता तथा निष्पापता आदि सद्गुणों की वृद्धि होती है। इस मार्ग पर चलने वाले साधक शीघ्र ही पापों, प्रलोभनों और विभिन्न प्रकार के मनोविकारों पर विजय प्राप्त करने के उपायों को जान लेते हैं। यही कारण है कि इस प्रक्रिया को अध्यात्मवादियों की भाषा में 'अघमर्षण-विधि' कहा जाता है। अर्थात् यह पापों से बचने और उन पर विजय प्राप्त करने का प्रकार है।

पहले लिखा जा चुका है कि हमारे सौर-मंडल में बुध, शुक्र, पृथिवी, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति, शनि, वारुणी, वरुण और यम नामक ग्रहों का समावेश होता है। इनमें से चन्द्रमा हमारी पृथिवी का उपग्रह है। ये सभी ग्रह और उपग्रह बड़े-बड़े गोले वा बड़ी-बड़ी भूमियाँ हैं।

ग्रहों में बुध सूर्य के सबसे अधिक निकट है। फिर क्रमशः शुक्र, पृथिवी, मंगल, बृहस्पति, शनि, वारुणी, वरुण और यम के स्थान हैं। ग्रहों में भी बृहस्पति, शनि, वारुणी और वरुण बड़े-बड़े ग्रह हैं। बृहस्पति तो ग्रहों में सबसे बड़ा है और अपने नाम को पूर्णतया सार्थक करता है। बृहस्पति का ही दूसरा नाम गुरु है।

बुध सबसे छोटा ग्रह है। उसका व्यास ३१०० मील है। उसका आकार पृथिवी के सोलहवें भाग के बराबर है। वह अपनी कक्षा में २९.७ मील प्रति सैकिंड की गति से घूमता है। सूर्य की

प्रदक्षिणा करने में उसकी गति सबसे अधिक है। क्योंकि बुध सूर्य के अधिक समीप है इसलिये बुध पर जो सूर्य की गरमी पहुँचती है, वह पृथिवी पर पहुँचने वाली गरमी से सात गुनी अधिक है। सूर्य के चारों ओर घूमता हुआ बुध अपना एक ही रुख सूरज की ओर रखता है। अतः बुध के एक ओर तो असह्य ताप बना रहता है और दूसरे रुख में असह्य ठण्डक होती है। बुध और चन्द्रमा की स्थितियों में बहुत अधिक समानतायें हैं। चन्द्रमा के समान ही बुध की भी कलायें होती हैं। सूर्य का एक चक्कर लगाने में बुध को ८८ दिन लगते हैं।

शुक्र, सूर्य और चन्द्रमा को छोड़कर आकाश मण्डल का सबसे अधिक चमकदार पदार्थ है। बुध और चन्द्रमा के समान ही शुक्र की भी कलायें होती हैं। वह अपनी कक्षा में २२ मील प्रति सैकिंड की गति से घूमता है और सूर्य की एक प्रदक्षिणा पूरी करने में उसे २२४ दिन लगते हैं शुक्र का व्यास ७,७०० मील है, जब कि पृथिवी का व्यास ७.६२७ मील है।

सूर्य से चलकर शुक्र के बाद पृथिवी और फिर मंगल का स्थान आता है। मंगल का रंग लाल है और वह पृथिवी की कक्षा से बाहर है। सूर्य की प्रदक्षिणा करते हुए मंगल १५ वर्ष में केवल एक बार पृथिवी के समीप आता है। अन्य ग्रहों के समान ही कक्षा भी लम्ब-वर्तुल ही है। मंगल का व्यास ४,२१६ मील है। उसका एक दिन हमारे २४ घण्टे, ३७ मिनट और २०,७ सैकिंड का होता है। एवं उसका वर्ष अर्थात् कक्षा का एक परिभ्रमण ६८७ दिन का होता है। मंगल अपनी कक्षा में १५ मील प्रति सैकिंड की गति से घूमता है। मंगल के दो चाँद अर्थात् दो उपग्रह भी हैं। उनमें से एक का नाम फोबोस है, जिसका व्यास १० मील है। दूसरा दिमास है, जिसका व्यास केवल ५ मील है।

मंगल और बृहस्पति के बीच में कई मध्य ग्रह हैं। उनमें से शिरीस, पेलास और वेस्ता अधिक प्रसिद्ध हैं। मध्य ग्रहों की संख्या पन्द्रह सौ के लगभग है, जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है। शायद भविष्य में और भी मध्यग्रहों का पता चलेगा और उनकी संख्या में वृद्धि हो जायेगी।

बृहस्पति हमारे सौर-मण्डल का सब से बड़ा ग्रह है। अन्य आठों ग्रह मिलकर भी बृहस्पति से छोटे हैं। पृथिवी से बृहस्पति १३१२ गुना बड़ा है। पृथिवी का व्यास तो ७८२७ मील ही है जबकि बृहस्पति का व्यास ८६०७० मील है। यह प्रति सैकिंड आठ मील की गति से सूर्य की प्रदक्षिणा कर रहा है। सूर्य की एक प्रदक्षिणा पूरी करने में इसे ११.८६ वर्ष लगते हैं। बृहस्पति का एक दिन रात हमारे ९६ घण्टे, ५५ मिनट और ३५.६ सैकिंड के बराबर होता है। पृथिवी की तुलना में अपनी धुरी पर घूमने की इसकी गति २५ गुना अधिक है। बृहस्पति के चाँद संख्या में बारह हैं। दूरबीन के द्वारा बृहस्पति और उसके चार चाँद आसानी से देखे जा सकते हैं। इसका एक चाँद तो हमारे ही चाँद के बराबर है। दो चाँद बुध ग्रह से भी बड़े हैं।

बृहस्पति से चलकर शनि आता है। इसकी गति मन्द है। इसीलिये इसे शनिश्चर कहते हैं। यद्यपि इसे अशुभ ग्रह माना जाता है; परन्तु यह सभी ग्रहों में अधिक सुन्दर है। इसकी सुन्दरता का कारण इसके घेरे, कंकण या वलय हैं, जो कि महाराष्ट्र के ब्राह्मणों की पगड़ी के समान शनि को अपनी लपेट में लिये रहते हैं। ये घेरे संख्या में तीन हैं और मुख्य ग्रह से तथा एक दूसरे घेरे से दूर-दूर भी हैं। सब से भीतर का घेरा शनि से ७००० मील दूर है और ११,५०० मील चौड़ा है। दूसरा घेरा पहिले से १००० मील दूर और १६००० मील चौड़ा है। तीसरा घेरा दूसरे से ३०००

मील दूर और १०,००० मील चौड़ा है। सब मिला कर शनि के ६ चन्द्रमा हैं। दसवें चन्द्रमा के होने का भी अनुमान लगाया जाता है। शनि के सबसे बड़े चन्द्रमा का व्यास ३५५० मील का है। यह सौर मंडल का सबसे बड़ा चन्द्रमा है।

शनि का एक वर्ष हमारे २५.५ वर्ष के बराबर है। शनि ६० मील प्रति सैकिंड की गतिसे सूर्यका परिभ्रमण करता है; अपनी धुरी पर यह १० घन्टे १२ मिनट में एक चक्कर पूरा कर लेता है। शनि का व्यास ७१ ५०० मील है। कहते हैं शनि अन्य ग्रहों की तुलना में बहुत अधिक हल्का है। यदि इसे पानी पर रखना सम्भव हो सके, तो यह बरफ की तरह तैरता ही रहेगा।

आजकल के ज्योतिर्विद्या विशारद कहते हैं कि पहिले किसी को वारुणी या युरेनस का पता न था। सन् १७७१ ई० में ही इस को खोजा गया है। यह अपनी कक्षा में ४॥ मील प्रति सैकिंड की गति से घूमता है और ८४ वर्ष में सूर्य की एक परिक्रमा पूरी करता है। इसका दिन दस घन्टे ४२ मिनट का होता है। इस प्रकार वारुणी का एक वर्ष अपने ६८,४०० दिन का होता है। वारुणी पृथिवी से ६४ गुना बड़ा है। इसका व्यास ३२,४०० मील है। इस की एक विचित्रता यह है कि वहाँ सूर्य पश्चिम से निकल कर पूर्व में अस्त होता है। इस के पाँच चन्द्रमा हैं, वे भी पश्चिम से निकलते और पूर्व में डूब जाते हैं।

वरुण या नेपच्यून के विषय में कहा जाता है कि इसकी खोज प्रथम वार सन् १८४५ ई० में ही हुई है। इसका व्यास २७,६०० मील है। यह अपनी धुरी पर १५ घन्टे ४८ मिनट में एक चक्कर पूरा करता है। सूर्य का एक चक्कर लगाने में इसे १६५ वर्ष

लगते हैं। अपनी कक्षा में यह ३,१/३ मील प्रति सैकिंड की गति से घूमता है।

यम का अन्य नाम प्रांतक है। कहते हैं कि इसे प्रथम वार सन् १६३० में ही खोजा गया है, यम की भूमि से हमारा सूर्य एक तारे के समान दिखाई देगा। फिर भी सूर्य से जो तेज यम को प्राप्त होता है वह हमारे चन्द्रमा को मिलने वाले तेज से २०० गुना अधिक है। सूर्य से यम तक का अन्तर ६ प्रकाश घन्टे का है। उसका निकटतम तारा उससे सवा चार प्रकाश वर्ष के अन्तर पर है। कहते हैं कि यम का एक वर्ष हमारे २४६ वर्ष के बराबर है। विद्वानों का यह भी अनुमान है कि आगे चल कर और भी ग्रहों की खोज होगी और हमारे सौर-मण्डल के ग्रहों की संख्या में वृद्धि हो जायगी।

क्या यम से आगे और कुछ नहीं है? इसका स्पष्ट उत्तर कौन दे? सूर्य तथा यम के बीच में स्वछन्द दौड़े-दौड़े फिरने वाले बड़े-बड़े धूमकेतुओं और पुच्छल-तारों का होना तो सिद्ध ही है। वे भी हमारे सौर-परिवार के अंग हैं। हमारे सौर-परिवार की सीमा से परे दूसरे सौर-परिवार हैं।

हमारे सौर-परिवार के गुरुत्व-आकर्षण का नियम हमारे सौर-परिवार में ही काम करता है। परन्तु आकाश में और भी बहुत से सौर-परिवार हैं। ये जो छोटे-छोटे असंख्य तारे हम देखते हैं; इनमें से बहुत से तो हमारे सूर्य से बड़े हैं। उनका धरातल भी गैसों से बना है। वे भी जाज्वल्यमान अग्नि-पिण्ड हैं। उनके भी अपने अपने ग्रह, उपग्रह, मध्यग्रह और अन्य अंगोपांग हैं। वे कितने हैं? और कैसे हैं? इसका ज्ञान मनुष्य को नहीं है।

हाँ वेदों में उनके उल्लेख तो हैं*। हमारा सूर्य भी तो आकाश के तारों में से एक तारा ही है। जो तारा हमसे निकटतम है, उसका अन्तर सवा चार प्रकाश वर्ष का है। अन्य तारे इससे भी अधिक दूर हैं। तारों की पारस्परिक दूरी भी बहुत अधिक है। अर्थात् उनके बीच में इतना अधिक शून्य-स्थान है कि उसमें कई-कई ग्रह आसानी से समा सकते हैं।

कुछ तारे खुली आँख से बिन्दुवत दिखाई देते हैं। कुछ तारे शक्तिशाली दूरबीनों से भी बिन्दुवत् ही दिखाई देते हैं। अन्यथा तो वे दिखाई देते ही नहीं। तारे जो कि वास्तव में बड़े-बड़े सूर्य ही हैं, हमको इसलिये बिन्दुवत् दीखते हैं कि वे हमसे अधिक दूर हैं। विद्वानों ने आकार, रंग, दूरी और तेज के आधार पर तारों के कई वर्ग निश्चित् कर रखे हैं। आकाश में अनन्त तारों का एक तारा-विश्व ही व्याप्त है। तारा-विज्ञान के मर्मज्ञ तारा-विश्व के विषय में जो बातें बताते हैं, साधारण मनुष्यों के लिये तो उनका समझना और उनकी सत्यता में विश्वास करना भी कठिन है।

हमें कभी-कभी आकाश-गंगा के दर्शन होते हैं। आकाश में बहुत दूर दिग्दिगन्त में व्याप्त प्रकाश की एक बड़ी सड़क-सी बन जाती है, वह आकाश-गंगा कहलाती है। क्या है वह ? वह तारा-परिवारों, तारा-बादलों, तारा-प्रकाशों, तारा-गैसों आदि-आदि का एक मिला-जुला समुच्चय-सा ही है। प्रकाश के ये बादल ज्योतिष-शास्त्र में नीहारिकायें वा तेजोमेघ कहलाते हैं। रंग-भेद तथा आकार-प्रकार के आधार पर इनके भी बहुत भेद हैं।

---

*सप्त दिशो नाना सूर्याः ॥ ऋ० ६। ११४। ३

यह आकाश जो शून्य कहलाता है, इसमें अनेक सौर-मण्डल हैं, अनेक तारा-मण्डल हैं, बहुत सी बड़ी-बड़ी नीहारिकायें हैं, फिर भी बहुत अधिक स्थान वा अवकाश इन सब के बीच-बीच में मौजूद है। यह जो नीला-सा दीखता है, क्या यह आकाश नहीं है? नहीं, यह तो हमारी दृष्टि की एक सीमा-मात्र है। तभी तो कवि ने कहा था :—

न कोई इब्तिदा इसकी,
न कोई इन्तहा इसकी।
मगर हद्द-ए नजर को,
आसमाँ कहना ही पड़ता है।

अनन्त सौर-मण्डलों, सौर-परिवारों, तारा-परिवारों आदि-आदि का यह विचार योगियों के वश का हो तो हो, जन-साधारण की बुद्धि से ये बहुत दूर की बातें हैं। ऐसी है, यह सृष्टि। इस सृष्टि का स्रष्टा है, वह इन्द्र। सृष्टि का विचार प्रज्ञान-दायक है। इन्द्र का विचार कल्याण-साधक है। इन्द्र का विचार करो।

[३]

वह इन्द्र है

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून्
यो गा उदाजदपधा बलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान
संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥

पद-पाठ

यः । हत्वा । अहिम् । अरिणात् । सप्त । सिन्धून् । यः । गाः । उत्ऽआजत् । अपऽधा । बलस्य । यः । अश्मनोः । अन्तः । अग्निम् । जजान । सम्ऽवृक् । समत्ऽसु । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

शब्दार्थ :—(यः) जो (अहिम्) मेघ को (हत्वा) मार कर (सप्त सिन्धून्) प्रवाहित होने वाले जलों को (अरिणात्) बहा देता है, (यः) जो (गाः) वेद विद्या का, गो—समूह का (उदाजत्) प्रकाश करता है, और (बलस्य) बल का (अपधा) धारण करने वाला है, (यः) जो (अश्मनोः) पर्वतों और मेघों के अन्दर भी (अग्निम्) अग्नि को, जीवन—शक्ति को (जजान) उत्पन्न करने वाला है, और जो (समत्सु) संग्रामों में (संवृक्) शत्रुओं को नष्ट करने वाला, उन

पर पूर्ण विजय प्राप्त करने वाला है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः इन्द्रः) वही इन्द्र है ।

भावार्थ :—जो बादलों को छिन्न-भिन्न करके मेंह बरसाता है, जो नदी-नालों और लहराते हुए सागरों का निर्माता है, जो वेद-वाणी का प्रकाशक, इन्द्रियों का जीवन-दाता, किरण-समूह का संचालक, लोक-लोकान्तरों का परिभ्रामक और प्राणियों का कर्मफल विधाता है, जो सर्वशक्तिमान् है, जिसने मेघों, पर्वतों और शिलाओं के अन्दर भी जीवन और ज्योति को जगमगा रखा है, जो सबका शासक, नियन्ता और संहार-कर्ता भी है, हे मनुष्यो ! वही इन्द्र है ।

प्रवचन

जो आक्रमण करके हनन करता है, उस आक्रामक, दुष्ट शत्रु को 'अहि' कहते हैं। अहि शब्द का प्रसिद्ध अर्थ साँप है। अविद्या और अन्धकार को भी अहि कहते हैं। अहि का मेघवाचक होना भी सर्वविदित है। आलंकारिक-भाषा में अहि को ही दस्यु वा राक्षस भी कहा जाता है। जो अहि का विनाश करता है, वह इन्द्र कहलाता है। प्रस्तुत-प्रसंग में अहि के सभी अर्थों का ग्रहण किया जा सकता है। आक्रमणकारी शत्रुओं के प्रतिरोध का नायक अर्थात् सेनापति इन्द्र है। सांपों का विनाशक, साहसी पुरुष इन्द्र है। अविद्या और अन्धकार का विनाशक, खण्डन-मण्डन-प्रिय विद्वान् इन्द्र है। मेघों का विदारक सूर्य इन्द्र है। दुष्टों और अना-

चारियों, समाज-कण्टकों एवं विद्रोहियों का विनाशक राजा, इन्द्र है। इन्द्रियों को वश में रखने वाला जीवात्मा इन्द्र है। और परमात्मा, वह तो इन्द्रों का भी इन्द्र है। वह तो महेन्द्र है, सर्वोपरि इन्द्र।

नाना प्रकार की गौवें संसार में विचरण कर रही हैं और सुख की धारायें उंडेल रही हैं। सूर्य-रश्मियाँ, जीवन, प्रकाश, स्वास्थ्य और रूप का दान कर रही हैं। पृथिवी अन्न, धन, आश्रय आदि प्रदान कर रही है। वेद-विद्या मन की चंचलता को हटा रही है, अज्ञान का मैल मिटा रही है, पापों को छुड़ा रही है, जीवन को शुद्ध, शान्त, उन्नत, पुष्ट और दक्ष बना रही है। और भी बहुत-सी गौवें हैं, और वे सब भी पुत्रवत प्राणियों के लालन-पालन में संलग्न हैं। इस सम्पूर्ण गो-कुल अथवा गो-समूह का स्रष्टा और प्रेरक वह सर्वोपरि इन्द्र ही है। वह स्वयं भी तो माता-पिता के समान सबका पालन-पोषण कर रहा है। वह तो माता-पिता का भी माता-पिता है। कैसी अद्भुत अनुभूति है? वह माता भी है, और पिता भी, नारी भी है, और नर भी, नारायण भी वही है। वह बल का भण्डार है। अशक्य क्या है? उसके लिये।

कभी-कभी बड़े-बड़े अद्भुत दृश्य दृष्टि-पथ में आते हैं। आकाश में गम्भीर गड़गड़ाहट होती है। दृष्टि सहसा ही उधर दौड़ जाती है। हम देखते हैं कि मानो बड़े-बड़े पहाड़ दौड़-दौड़ कर, मेण्ढों के समान आपस में टकरा रहे हैं। कभी घनघोर वर्षा में ये दृश्य दिखाई देते हैं, कभी बिना वर्षा के सूखे में ही। और भी एक विचित्रता होती है। सब कोई उसको जानते हैं। भयंकर-ज्वाला आकाश में भभक उठती है। दूर-दूर तक उसकी लपटें लपलपाती हुई फैल जाती हैं। आकाश में आग। शून्य में आग।

जलोंमें आग। मेघोंमें आग। हवाओंमें आग। पाषाणों में आग। ये सब सर्वथा अनोखी बातें हैं। इन सब लीलाओं का सूत्रधार कौन है ? वही इन्द्र।

अग्नि तत्व के स्थूल और सूक्ष्म अनेक भेद हैं। वैज्ञानिक सभी तात्विक भेदों का अनुसन्धान कर रहे हैं। सम्पूर्ण भेद अभी तक अल्पज्ञ मनुष्य की पकड़ में आ नहीं सके हैं। ताप, हरारत, प्रकाश, विद्युत, गैस, इत्थर, अणु और हाइड्रोजन आदि के भेद-प्रभेद और पारिभाषिक शब्द-जाल में आबद्ध, जितनी अग्नियों को हम जान चुके हैं; इतना ही सम्पूर्ण अग्नि-तत्व नहीं है। वह इस से बहुत अधिक है। उसके रूप अनेक हैं। वह दाहक तो है ही, पावक, आह्लादक और स्रष्टा एवं तारक भी है। यह अग्नि-विद्या का सम्पूर्ण प्रसार और व्यापार उस इन्द्र का ही तो चमत्कार है।

संग्रामों में जूझ रहे वीर 'मैं-मैं' की पुकार मचा रहे हैं। शत्रु-संहार का यश लूट रहे हैं। सफलताओं के सेहरे बान्ध रहे हैं। पुरुषार्थ के पुरस्कार ले रहे हैं. परन्तु उनको यह भी स्मरण रखना चाहिये कि उनकी विजय में प्रभु की कृपा का समावेश भी है। विजय के मद में, अथवा शस्त्रों के बल पर, या बहु-संख्या के आधार पर इतराकर, कोई भी सत्य की हत्या न करे। कोई भी अन्याय और अत्याचार का सहारा न ले। कोई भी सज्जनों का जी न दुखाये। कोई भी दुर्बलों पर हाथ न उठाये। कोई भी पराये स्वत्वों का अपहरण न करे। अन्यथा प्रभुकी कृपाके अभाव में सब मजा किरकिरा हो जायेगा और सर्वथा ही उलटे परिणाम सामने आयेंगे। जो प्रभु के नियमों और आदेशों का उल्लंघन करते हैं, वे पापी भारी यातनाओं को भोगते हैं। पापों के दुष्परिणामों को

भोगे बिना तो कोई भी छुटकारा नहीं पा सकता। प्रभु के दरबार में न तो रिश्वत-खोरी की गरम बाजारी है, न सिफारिश की भरमार। वहाँ तो खरा न्याय होता है। इन्द्र का दरबार जो ठहरा। सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् का दरबार।

भौतिक-अग्नि का विचार समाप्त करके, आत्मिक और आध्यात्मिक अग्नि का विचार करो। भौतिक ऐश्वर्य का विचार छोड़कर, अभौतिक और आध्यात्मिक-ऐश्वर्य का विचार करो। भौतिक और स्थूल उपलब्धियों को त्यागकर, अभौतिक एवं सूक्ष्म उपलब्धियों को प्राप्त करो। मानव जीवन का चरम-लक्ष्य यही है। इस लक्ष्य की प्राप्ति पुरुषार्थ से, पूर्ण संलग्नता और सम्पूर्ण कार्य-शक्ति के साथ शुभ कर्मों के अनुष्ठान से होती है। यह सत्य है, फिर भी ईश्वर की कृपा तो होनी ही चाहिये। उसकी कृपा से ही भौतिक और अभौतिक, स्थूल और सूक्ष्म ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। हे मनुष्यो! केवल मात्र ऐश्वर्य को ही नहीं, उस ऐश्वर्य-दाता को तथा उसकी दान-प्रणालियों को भी जानो।

मनुष्य इस अखिल प्रपंच का विचार करता है और इसके रहस्य एवं सौंदर्य में खो-सा जाता है। आत्म-विस्मृति की अवस्था में पहुंच कर तो स्थिति और भी अधिक अनिर्वचनीय हो जाती है। जो आनन्द जागृति में नहीं, वह सुषुप्ति में है। जो प्राप्त करने में नहीं, वह खोने में है। अर्थात् त्याग में—आत्म-त्याग में।

अजब खेल खेला है, तूने खिलारी।
जिसे देखकर दंग दुनिया है सारी॥

आओ, उसके गीत गायें !

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि
यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददू
अर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥

पद-पाठ

येन । इमा । विश्वा । च्यवना । कृतानि । यः । दासम् । वर्णम् । अधरम् । गुहा । अकरित्यकः । श्वघ्नीऽइव । यः । जिगीवान् । लक्षम् । आदत् । अर्यः । पुष्टानि । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

शब्दार्थ—(येन) जिसके द्वारा (इमे) ये (विश्वा) सब (च्यवना) गतिशील लोक-लोकान्तर (कृतानि) बनाये गये हैं, (यः) जो (दासम्) अपने भक्त को (अधरम्) गुप्त (वर्णम्) सौन्दर्य और (गुहाकः) हार्दिक आनन्द प्रदान करता है, (यः) जो (श्वघ्नीव) महान् सेनाओं, अथवा बड़ी तोपों के समान (लक्षम्) लक्ष्य को (जिगीवान्) जीतने वाला और (अर्यः) दुष्ट दल की (पुष्टानि) शक्तियों को (आदत्) खींचने वाला, दबा देने वाला है, (सः जनासः इन्द्रः) हे मनुष्यो ! वही इन्द्र है ।

भावार्थ :—जिसने ये सब लोक-लोकान्तर बनाये हैं, जो अपने भक्तों को अपूर्व सौन्दर्य और हार्दिक आनन्द-प्रदान करता है, जो महान विजेताओं के समान सभी को जीत लेता है, और जो पापियों के बल को पल की पल में तोड़ देता है, हे मनुष्यो ! उसे याद रखो, वही इन्द्र है।

प्रवचन

प्रत्येक कार्य का कोई कर्त्ता अवश्य होता है। बिना कर्त्ता के कोई कार्य हो ही नहीं सकता। यह एक सिद्धान्त है। प्रत्येक नियमित व्यवहार का कोई नियामक अवश्य ही होता है। बिना नियामक के कोई नियमित व्यवहार हो ही नहीं सकता। यह भी एक सिद्धान्त है।

यह पृथिवी, इसके नानाविध पदार्थ, इसके प्राणी, इस पृथिवी की गतिविधि, ये पंचमहाभूत और उनके नानाविध मिश्रण एवं विकार, ये सूर्य, चन्द्र और तारागण, ये विभिन्न लोक-लोकान्तर, यह कालप्रवाह, यह कर्म-भोग-चक्र, यह आवागमन का विधान, ऋतुओं का परिवर्तन, दिन-रात का गमनागमन, भौगोलिक और खगौलिक सूक्ष्म क्रियाओं अर्थात् आकर्षण, अपकर्षण, विकर्षण, स्तम्भन और उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय का निश्चित् कार्यक्रम आदि जो नियमित कार्य और व्यवहार हैं, और हो रहे हैं; इन सभी का कर्त्ता तथा नियामक कौन है? वेद का उत्तर है—हे मनुष्यो ! वह इन्द्र ही इन सबका कर्त्ता एवं नियामक है।

इन्द्र भी उसी प्रभु के अनन्त नामों में से एक नाम है, जिसके लिये ईश्वर, परमात्मा इत्यादि अनेक नामों का व्यवहार होता है।

वैदिक सिद्धान्त के अनुसार यह जगत् ही ईश्वर की सिद्धि और उसकी महत्ता का सूचक परम प्रमाण है।

भगवान् अपने भक्तों के वश में है, और वह उनको अपूर्व सौन्दर्य एवं हार्दिक आनन्द प्रदान करता है। ओ सांसारिक चकाचौंध में फँसे हुए भ्रान्त लोगो! भक्तों के काले-पीले चमड़े को तुम क्या देखते हो? देख सकते हो तो, उनके आत्मिक सौन्दर्य को देखो। उनके हृदय की शुभ्रता और विशालता को देखो। उनके आचरण की पवित्रता को देखो। उनके मन की स्थिरता, निर्मलता और दृढ़ता को देखो। देखो सात्त्विकता और सरलता की उस महत्वपूर्ण छाप को, जो कि उनकी गति-विधि, भाव-भंगिमा और उनके शरीर के कण-कण पर अंकित है। कर सको तो उनके आत्मिक बल, ओज, तेज और प्रभाव का अनुगमन करो। उनकी अमोघ संकल्प-शक्ति का परिचय प्राप्त करो। प्रभु ने अपने भक्तों को अपूर्व एवं अनेकविध अलौकिक, सौन्दर्य प्रदान कर रखा है। अपने भक्तों का कल्याण करना, यह तो उस महाप्रभु का अटल नियम ही है। जो सच्चे हृदय से उसके प्रति आत्म-समर्पण एवं आत्म-निवेदन करते हैं, वे उसे प्राप्त कर लेते हैं। उसके गुण, कर्म और स्वभाव में से कुछ न कुछ आत्मसात भी कर लेते हैं। उसके रंग में अपने आपको रंग लेते हैं। ऐसा ही है।

ईश्वर-भक्ति के द्वारा जिस आनन्द की प्राप्ति होती है, वह सर्वोपरि है। दूसरा कोई भी आनन्द उसकी तुलना में अत्यन्त तुच्छ है। विषयासक्ति तो दोष है। इन्द्रियों के द्वारा रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श के जो-जो सुख प्राप्त किये जाते हैं, वे क्षण-भंगुर तो हैं ही, थोड़े-थोड़े उपभोग के पश्चात् उनका आकर्षण भी

शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। त्याग और उपकारमय जीवन-यापन द्वारा जो अहंकार की तृप्ति-सी होती है, वह स्वार्थपरता के सुख से तो उत्तम है; परन्तु सर्वश्रेष्ठ है ईश्वर-भक्ति का आनन्द ही। ज्यों-ज्यों भक्त का प्रभु-प्रेम प्रगाढ़ रूप धारण करता जाता है, त्यों-त्यों भक्ति-रस का मिठास और नशा भी बढ़ता चला जाता है।

भक्ति क्या है ? भगवान् के प्रति मनुष्य के परम प्रेम को भक्ति कहते हैं। किसी-किसी पात्र में भक्तिभाव का प्रकाश विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। प्रभु के परम प्रेम को धारण करके मनुष्य मस्त हो जाता है, आनन्दित हो जाता है, सिद्ध हो जाता है, आनन्दी बना रहता है, कामनाओं से रहित हो जाता है, वह मेरे और तेरे के भेद-भाव से भी ऊपर उठ जाता है। प्रभु के भक्तों को हार्दिक सुख प्राप्त होता है। उनके सुख का स्रोत कहीं बाहर नहीं; अपितु अपने हृदय के अन्दर ही प्रवाहित होता रहता है। क्यों न हो ? भक्तों के हृदय में प्रभु का निवास जो होता है। वैदिक-भक्तिवाद के अनुष्ठान से प्राप्त होने वाले रस का आस्वाद तो कोई सच्चा भक्त ही प्राप्त कर सकता है, वाणी या लेखनी उसका वर्णन नहीं कर सकती। वह तो गूंगे के गुड़ के समान है।

गूंगे का गुड़ है भगवान्,
बाहिर-भीतर एक समान।
गुड़-सा मीठा है भगवान्,
बाहिर-भीतर एक समान॥

लोग एक लक्ष्य निर्धारित करते हैं, परन्तु कितने हैं जो उसे प्राप्त करने के लिये अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य से प्रयत्न करते हैं ? और

कितने हैं ? जो अपने प्रयत्नों में पूर्ण सफल होते हैं। जो अपने जीवन-संघर्ष में विजय-श्री को प्राप्त करते हैं, संसार में ऐसे नर-श्रेष्ठ कितने हैं ? प्रथम तो सफलता के लिये प्रयत्न करने वाले मनुष्य ही बहुत थोड़े हैं; फिर जो विधिपूर्वक यत्न करते और सफल होते हैं, वे तो बहुत ही कम हैं। कोई अज्ञानवश असफल हो जाता है, कोई भ्रमवश। कोई भोग, रोग, शोक वा मोहवश असफल रहता है, और कोई किसी अन्य मनोविकारवश। हम क्या ? और क्या हमारी शक्ति ? यदि मिल सके तो ईश्वर-प्राप्ति ही मानव-जीवन की सर्वश्रेष्ठ सिद्धि है। उसको पा लिया, तो सब कुछ मिल गया।

प्रभु तो सर्वशक्तिमान् है। अज्ञान का लवलेश भी उसमें नहीं है। न तो उसे कोई अभाव है, और न ही उसके कार्यों में किसी विघ्न-बाधा का होना सम्भव है। अभ्यस्त तोपचियों के निशाने भले ही चूक जायें; परन्तु प्रभु के कार्य तो सदा ही नियम-पूर्वक होते हैं। प्राकृतिक-जगत् में कार्य कर रहे प्रभु के नियमों पर हम पूर्ण विश्वास कर सकते हैं। दुष्टों के बल को भंग करना और अपनी योजनाओं को सफल बनाना वह हमारा अन्तर्यामी प्रभु खूब जानता है। अपने कार्यों में वह पूर्ण समर्थ है। वह सम्राटों का भी सम्राट् है, वह विजेताओं का भी विजेता है। आप उसे अपना प्यारा कोई नाम दे दीजिये, वेद उसका वर्णन इन्द्र के रूप में करता है।

[५]

श्रद्धावान् बनो

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति
घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति
श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥

पद-पाठ

यम् । स्म । पृच्छन्ति । कुह । सः । इति । घोरम् । उत । ईम् । आहुः । न । एषः । अस्ति । इति एनम् । सः । अर्यः । पुष्टीः । विजः ऽइव । आ । मिनाति । श्रत् । अस्मै । धत्त । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

शब्दार्थ :—(यम्) जिस (घोरम्) घोर के विषय में (इति पृच्छन्ति स्म) लोग प्रायः यह पूछा करते थे, और पूछा करते हैं कि (सः) वह परमात्मा (कुह) कहां है ? (उत) और (ईम्) यह भी (आहुः) कहते हैं कि (एषः) यह परमात्मा (न अस्ति इति) कहीं है ही नहीं। (सः) वह (अर्यः) शत्रुओं, विरोधियों, दुष्टों की (पुष्टीः) शक्ति, समृद्धि, विभूति को (विज इव) पानी के बुलबुले अथवा साधारण

तिनके के समान अनायास ही (आमिनाति) तोड़-फोड़ देता है। (जनासः) हे मनुष्यो ! (अस्मै) उस भगवान् के प्रति (श्रद्) श्रद्धा को (धत्त) धारण करो। क्योंकि (सः इन्द्रः) वह इन्द्र है।

भावार्थ :—जिस सर्वोपरि सामर्थ्यवान् भगवान् के विषय में लोग पूछते हैं कि वह कहाँ है ? कैसा है और कितना है ? एवं जिसके विषय में कुछ नास्तिक लोग यह अनुचित बात भी प्रायः कहा करते हैं कि वह तो सर्वथा ही नहीं है। वह सर्वशक्तिमान् परमेश्वर दुष्टों को और उनकी सम्पूर्ण समृद्धि को पानी के एक बुलबुले या अतितुच्छ साधारण तिनके के समान अनायास ही तोड़-फोड़ देता है। हे सांसारिक लोगो ! उसके प्रति अपने हृदय में पूर्ण श्रद्धा और प्रेम को धारण करो। क्योंकि वही सबका सर्वोपरि शासक और आराध्य-देव है।

प्रवचन

लोग प्रायः पूछते ही रहते हैं कि वह कहां है ? कैसा है ? कितना उसका परिमाण है ? और वह क्या करता है ? ये प्रश्न अत्यन्त सनातन हैं। कुछ मनचले मनुष्य इससे भी आगे बढ़ जाते हैं। वे ठठोली के स्वर में अत्यन्त निर्लज्जता पूर्वक यह कहते हुए सुने जाते हैं, कि ईश्वर नाम का कोई तत्त्व कहीं है ही नहीं। न ऐसा तत्त्व कभी था, और न ही कभी होगा। ईश्वर विषयक सभी बातें तो अल्पज्ञ लोगों की निस्सार कल्पनायें हैं। ये धूर्तों

ने भोले-भाले लोगों को ठगने के लिये फैला रखी हैं। वे और भी बहुत कुछ अनाप-शनाप बकवास करते हैं।

एक बच्चे ने मानो किसी बड़े नामी पहलवान को कुश्ती लड़ने की चुनौती दी। पहलवान बच्चे की बात को सुन कर हंसता हुआ चला गया। पिता बालक को गोद में लेकर खिला रहा था। सहसा ही पिता को एक खेल सूझा। उसने बच्चे के सामने खम ठोक कर झूठ-मूठ में ही कुश्ती लड़ी, और अपने आप ही चित्त हो गया। क्या उस पहलवान की कुछ गौरव-हानि हुई ? या क्या उस पिता की शान को कुछ बट्टा लगा ? नहीं-नहीं, कुछ भी नहीं।

नास्तिक लोग भगवान् को चुनौती पर चुनौती दिये चले जा रहे हैं। वे बहुत बढ़-बढ़कर बातें बनाते हैं। तर्क के तीर चलाते हैं। उस अखण्ड-सत्ता में काल्पनिक तोड़-फोड़ करते रहते हैं। आँख, कान, नाक, मुंह, हाथ, पांव मटकाते हैं और कहते हैं कि यदि कोई ईश्वर कहीं है, तो वह आये और हमारी उंगली को झुका दे। वे दुष्ट कभी-कभी अपशब्दों का व्यवहार भी करने लगते हैं। क्या ईश्वर कोई ऐसा क्षुद्र प्राणी है कि उनकी बचकाना चुनौतियों को सुनकर, उनके तुच्छ और उच्छृंखल व्यवहारों को बन्द करने के लिये दौड़ा-दौड़ा आये ? और जब जब भी ये जरा मचलने लगें, तभी आकर उनको शान्त करे ?

वह तो सर्वव्यापक, सब का स्वामी, सर्वान्तर्यामी और सर्वोपरि शासक है। एकदेशीय प्राणियों वा पदार्थों के समान न तो उसके कहीं आने-जाने की कोई आवश्यकता है, और न ही सांसारिक अर्थों में उसका कहीं आना-जाना सम्भव है। वह तो सर्वद्रष्टा है, सर्वरक्षक है, सबका जीवनाधार और सनातन है। आस्तिक जन तो उसको अपना आराध्य-देव मानते ही हैं,

नास्तिकों का पालक-पोषक भी वही है। कोई चाहे कितना भी उत्पाती, बकवादी या दुष्ट क्यों न हो, वह तो सभी का लालन-पालन करता है। उससे बढ़ कर बलवान् और कोई कहीं नहीं है। वह विज्ञान-स्वरूप, आनन्द स्वरूप और ज्योतिः स्वरूप है।

इस विस्तृत वसुन्धरा पर, और इस सुविशाल गगन-मण्डल में उसकी शक्तिमत्ता के अनन्त- चमत्कार हमारे सामने प्रत्यक्ष ही वर्तमान हैं। उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के खेल वही रचाता है। जीवन और मृत्यु के तमाशे वही दिखाता है। इतिहास हमें बताता है—बड़े-बड़े अत्याचारी इस संसार में हो चुके हैं, परन्तु ईश्वरीय सत्ता के सामने वे सभी अत्यन्त तुच्छ और नगण्य-से ही थे। उसने वे पानी के बुलबुले के समान फोड़ दिये या एक साधारण तिनके के समान तोड़ दिये। एक रजकण के समान उसने वे सभी न जाने कहाँ उड़ा दिये? बड़े-बड़े सम्राटों के मुकुट ही नहीं, उनके सिर भी धूल चाटते फिरे। लोगो! उससे डरो। नगण्य होकर भी तुम अभिमान क्यों करते हो?

उस दिव्य-देव के प्रति श्रद्धा और प्रेम को धारण करो। हे स्त्री पुरुषो! उसकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना सच्चे हृदय से नित्य प्रति किया करो। उपालम्भ न दो। शिकायत न करो। नास्तिक और अश्रद्धालु न बनो। तुम अपने जीवन को पूर्णतया श्रद्धामय बना लो। और अपने प्रत्येक कार्य से अर्थात् मनसा, वाचा, कर्मणा अपनी हार्दिक श्रद्धा का परिचय दो। जब कोई उसे सर्वोपरि, सर्वद्रष्टा, सर्वरक्षक, सर्वेश्वर, सकल ऐश्वर्य का भण्डार और सर्व-गुणागार मानता है, तब वह पापाचरण कैसे कर सकता है? और यदि कोई दो-रंगी चालें चलता है, मन में कुछ और रखता है, वाणी से कुछ और बोलता है, कर्म से कुछ और ही करता है, तो

हम उसे नास्तिक कहेंगे, ढोंगी और दम्भी कहेंगे। सच्चे आस्तिक जन तो दिखावा नहीं दिखाते।

अज्ञानी लोग सर्वत्र जाज्वल्यमान् ईश्वरीय प्रकाश को नहीं देखते। वे देख ही नहीं सकते। वे बेबस हैं, परन्तु जो सम्यक् ज्ञानवान् हैं, और देख सकते हैं, वे तो देखते ही हैं। वे तो साफ कहते हैं :—

या रब दर ओ दीवार में मैंने तुझे देखा।
हर वादी-ए-पुर ख़ार में मैंने तुझे देखा॥
कहता है कौन तुझको, कि तू परदा नशीं है।
हर जंगल ओ बाजार में मैंने तुझे देखा॥

और—

तेरे ही नूर से रोशन है, यह सारा आलम।
तेरे होने का पता देती है, दुनिया तेरी॥

निस्सन्देह सत्यशील, तत्वदर्शी, प्रेमी जनों की अनुभूतियाँ ऐसी ही होती हैं। हे लोगो! जिसको तुम पूछते हो, यह इन्द्र वही है। अज्ञानी जिसको नहीं जानते, यह इन्द्र वही है। सबका एक समान आराध्य-देव यह इन्द्र ही है। यह इन्द्र सब का है, और सभी के लिये एक जैसा है। उसके प्रति तुम पूर्ण श्रद्धा को धारण करो। उलझनों में मत उलझो। प्रलोभनों में मत फँसो। किसी भी स्थान, समय या अवस्था में उसे न भूलो। श्रद्धावान् बनो। आस्तिक बनो। जिसने उसे विसार दिया, उसने अपना सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ ही गंवा दिया। जिसने उसे पा लिया, उसने अपने जीवन के चरम-लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। जो उसका हो गया, उसने उसको अपना बना लिया।

[६]

प्रभु के साधन

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य

यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।

युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः

सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥

पद-पाठ

यः । रध्रस्य । चोदिता । यः । कृशस्य । यः । ब्रह्मणः । नाधमानस्य । कोरेः । युक्तऽग्राव्णः । यः । अविता । सुऽशिप्रः । सुतऽसोमस्य । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

शब्दार्थ :—(यः) जो (रध्रस्य) समृद्ध पुरुष का (चोदिता) समृद्धि-दाता और (यः) जो (कृशस्य) निर्धन या निर्बल का (चोदिता) प्रेरक, बल-दाता या सहायक है, (ब्रह्मणः) वेद का, (नाधमानस्य) उत्कर्ष का, ऐश्वर्य का और (कीरेः) कीर्तिवर्धक गुण, कर्म, एवं स्वभाव का प्रेरक है, (यः) जो (युक्त ग्राव्णः) सब सत्य-विद्याओं का प्रकाशक, एवं सब पदार्थों का उत्पादक और (सुत सोमस्य) शुभगुणों के इच्छुक

बालवर्ग का (सुशिप्रः) कार्य-कुशल अत्यन्त तेजस्वी शिक्षक तथा (अविता) रक्षक है, (स जनास इन्द्रः) हे मनुष्यो ! वही इन्द्र है।

भावार्थ :- मनुष्यो ! जो धनियों का धन, निर्धनों का आशा-केन्द्र, निर्बलों का बल, वेद-विद्या और सब प्रकार के पदार्थों एवं उत्तमोत्तम गुण, कर्म और स्वभाव का प्रकाशक, रक्षक तथा सबका सर्वोत्तम शिक्षक है, वही इन्द्र है।

प्रवचन

संसार के सभी गरीबों को यह शिकायत है, कि न कोई उनकी बात पूछता है, और न कोई उनकी सहायता करता है।

माया को माया मिले, कर-कर लम्बे हाथ।
तुलसीदास गरीब की, कोई न पूछे बात॥

संसार के प्रत्येक निर्बल को यह शिकायत है कि न कोई उसकी बात पूछता है, और न कोई उसकी सहायता करता है।

सभी सहायक सबल के, दुर्बल कौन सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहीं देत बुझाय॥

परन्तु भगवान् के घर में तो अमीर, गरीब, दुर्बल-सबल, नीच-ऊंच और छोटे-बड़े का यह भेदभाव नहीं है, जो आज वर्गवाद के आंधी-तूफान उठाता और राग-द्वेष की भयंकर ज्वाला भड़काता हुआ हमारे दृष्टि-पथ में आ रहा है। भगवान् तो तथा-कथित अमीर और गरीब प्रभृति सभी से प्रेम करता है। कीड़ी

और कुंजर सभी के संरक्षण का ध्यान उसे है। वह किसी का पक्षपात नहीं करता। वह सभी को अपनी सुनिश्चित् योजनाओं के अनुसार उन्नति के एक ही जैसे अवसर बिना किसी भेदभाव के बारम्बार प्रदान करता है। यदि मनुष्य उन अवसरों का लाभ न उठाये, तो यह उसका अपना दोष है। भगवान् ने तो कर्म करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रत्येक मनुष्य को प्रदान कर ही रखी है। परन्तु फल भोगने में मनुष्य परतन्त्र अवश्य है। अपने शुभ या अशुभ कर्मों के शुभ या अशुभ फल तो प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर की अटल व्यवस्था के अनुसार अवश्य ही भोगने होते हैं। जो कुछ बोया जाता है, वही काटना पड़ता है :—

करनी करे तो क्यों डरे, करके क्यों पछताये ।
बोये पेड़ बबूल के, आम कहां से खाये ।।

जो माता, पिता और गुरुजन अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझते हैं, वे अपनी सन्तान और शिष्यवर्ग के प्रशिक्षण का विशेष प्रबन्ध करते हैं। वे उनके लिये अन्न, वस्त्र, सुख, सुविधा, आवास आदि के उपकरणों और उनके उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में सहायक परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। इस पर भी यदि अपने दोष, कुरीति, कुसंग और प्रमाद-वश, उनकी सन्तान एवं उनका शिष्यवर्ग ना-समझी की बातें करे और बारम्बार असफल होता रहे, आत्मोन्नति की ओर कुछ भी ध्यान न देकर, निरन्तर अपने पूर्वजों और गुरुजनों को कलंकित करने वाले कर्म ही करता रहे, तो माता, पिता और गुरुजनों का इसमें क्या दोष है ?

प्रभु ने वेदों का प्रकाश करके ज्ञान का अक्षय-भण्डार मानव-जाति को सृष्टि के आरम्भ में ही सौंप दिया है। प्राकृतिक-जगत्

में काम करने वाले नियम भी एक खुली किताब के रूप में सभी के सामने हैं। थोड़ा ध्यान देने पर ही प्राकृतिक-जगत् में अद्भुत एवं प्रभूत बोध प्राप्त हो सकता है। प्रभु ने अपनी नाना-विध प्रजाओं के हित के लिये बहुमूल्य ऐश्वर्य संसार में सर्वत्र बखेर रखा है। मूढ़ लोग तो सोने-चांदी और रुपये-पैसे से आगे की कोई बात सोच ही नहीं सकते। देखो, यह मिट्टी सोना उगलती है। ये नदी-नाले घी, दूध और शहद के रूप में थोड़े से पुरुषार्थ के द्वारा ही परिवर्तित किये जा सकते हैं। दिग्दिगन्त में व्यापक पर्वत-मालाओं पर, जो व्यर्थ ही पड़े हुए हैं, वे बड़े बड़े हिम-भण्डार वास्तव में अत्यन्त मूल्यवान् हैं। यद्यपि ये जल के ही विकार मात्र हैं, तथापि ये मानव-जाति की इन्धन, तेज, प्रकाश, जल और इसी प्रकार से अनेक महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को सहज में ही पूर्ण कर सकते हैं। अपनी प्रजा या सन्तान के हित के लिये भगवान् से बढ़ कर ध्यान और कौन रखता है?

जो शुभ गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थों का सम्पादन करते हैं, भगवान् उनके हर्ष, उत्साह, उमंग, तरंग और आनन्द को विशेष रूप से बढ़ा देते हैं। यह प्रत्यक्ष प्रोत्साहन है, जो कि भगवान की ओर से शुभ-कर्म-कर्त्ताओं को प्रतिक्षण प्राप्त हो रहा है। यह हमारे प्रतिदिन के अनुभव की बात है। इसी प्रकार अशुभ कर्मों में मनुष्य की प्रवृत्ति के होने पर, जो-जो भय, शोक, लज्जा और संकोच आदि के भाव कर्म-कर्त्ता मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होकर, उसके प्रत्यक्ष अनुभव का विषय बनते हैं, वे सब भी ईश्वर-प्रेरित ही होते हैं। धन्य हैं वे श्रेष्ठ मनुष्य, जो इन दिव्य संकेतों अथवा मंगल-संदेशों को समझ कर अपना जीवन सफल करते हैं। ये संकेत वास्तव में ईश्वर की ओर से ही हैं और इनकी प्रवञ्चना बुरे

कर्मों का निषेध करने, कुमार्ग पर चलने वालों को चेतावनी देने, तथा अशुभ प्रवृत्तियों को निरुत्साहित करने के लिये ही होती हैं।

प्रभु के रक्षा-साधन और रक्षा-प्रकार भी अनन्त हैं। प्रशिक्षण की उसकी रीतियां भी अनन्त, निराली और अत्यन्त रोचक हैं। प्रेरणा-प्रदान करने के उसके नियम भी अत्यन्त चमत्कारी और अमोघ हैं। उसकी कृपा, उसकी प्रेरणा और उसकी अनुभूति, ये मिल जायें, तो बस, जीवन सफल हो जाये। उसकी कृपा, उसकी प्रेरणा, उसकी अनुभूति, यही तो मानव-जीवन का चरम-लक्ष्य है। मनुष्य का पुरुषार्थ प्रभु की कृपा से ही इष्ट-फल की प्राप्ति में समर्थ होता है। तभी तो सनातन-भिक्षुक उसके द्वार पर पुकार रहे हैं :—

"हे प्रभो ! आपकी कृपा से इस जप और उपासना आदि के द्वारा हमको शीघ्र ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हो।"

जिसको सम्बोधित करके यह प्रार्थना की जाती है, और जो विधिवत् प्रार्थना करने पर इसे स्वीकार करता है, वही इन्द्र है।
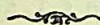
[७]

आशा-किरण

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो
यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान
यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७॥

पद-पाठ

यस्य । अश्वासः । प्रऽदिशि । यस्य । गावः । यस्य । ग्रामाः । यस्य । विश्वे । रथासः । यः । सूर्यम् । यः । उषसम् । जजान । यः । अपाम् । नेता । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

शब्दार्थ :—(अश्वासः) शीघ्र गमन करने वाले ग्रह, उपग्रह, विद्युत्-प्रवाह घोड़े आदि एवं (प्रदिशि) सब दिशायें (यस्य) जिसके वश में हैं । (गावः) सम्पूर्ण विद्यायें, किरणें, वाणियाँ तथा गौ आदि पशु (यस्य) जिसके वश में हैं, (ग्रामाः) सभी ग्राम अर्थात् ग्रामों और नगरों के सभी निवासी एवं सभी वर्ग (यस्य) जिसके वश में हैं, (विश्वे) सब (रथासः) यान आदि रथ तथा सभी रमणीय पदार्थ (यस्य) जिसके वश में हैं, (यः) जो (सूर्यम्) सूर्य और (यः) जो (उषसम्) उषा को, दिन की प्रथम किरण, आशा की पहली झलक,

आध्यात्मिक जीवन की सर्व प्रथम ज्योति, मोक्ष-प्राप्ति की सर्व प्रथम ज्योति, मोक्ष-प्राप्ति की सर्व प्रथम अनुभूति को (जजान) उत्पन्न करता है, और (यः) जो (अपाम्) जलों का, कर्म-प्रवाह का, प्राकृतिक-संसार का (नेता) संचालक एवं व्यवस्थापक है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः इन्द्रः) वही इन्द्र है ।

भावार्थ:–शीघ्र गमन करने वाले अश्व अर्थात्, बायु, प्रकाश, लोक-लोकान्तर और घोड़े आदि पशु, सब दिशायें, सब प्रकार की विद्यायें, भूमियाँ, सब पालन-पोषण में सहायक शक्तियाँ, सब ग्राम अर्थात् संघ और समाज; जल, थल और नभ में चलने वाले सभी यान; सब रमणीय पदार्थ, सभी सूर्य और सभी प्रकार की उषायें, जिसके वश में हैं; जो इस अखिल, अखण्ड कर्म-प्रवाह का प्रवर्त्तक है, हे मनुष्यो ! वही इन्द्र है ।

प्रवचन

जो शीघ्रगामी हो, उसे अश्व कहते हैं । प्रसंगानुसार एक ही अश्व शब्द के मन, घोड़ा, विद्युत, सूर्य, काल, आदि अनेक अर्थ होते हैं । दिशा वास्तव में तो एक ही है, परन्तु सापेक्ष भावना से चार, छः, आठ और दस दिशाओं का परिगणन होता है । जो गमन करती है, उसे गौ कहते हैं । सूर्य-रश्मियाँ, विद्युत-किरणें, पृथ्वी, विद्या, वाणी, इन्द्रियाँ, और पशु आदि भेद से गौएँ बहुत प्रकार की हैं । संघान, संगठन, समूह, समाज, वर्ग और सुव्यवस्थित आवास केन्द्र की ग्राम संज्ञा होती है । ग्राम बहुत से हैं ।

पत्थर का एक टुकड़ा भी तो परमाणुओं का एक ग्राम ही है। जो यात्रा को सुखप्रद बनाने के यान्त्रिक साधन हैं, उनको रथ कहते हैं। छकड़े, ठेले, रथ, ताँगे, मोटर, रेल, जल-यान और नभ-यान, इन सभी का ग्रहण रथ शब्द से होता है। आध्यात्मिक प्रसंगों में शरीर का ग्रहण भी रथ शब्द से होता है। रथ शब्द का भाव विस्तार भी बहुत अधिक है।

ये सभी अश्व जो बहुत उपयोगी हैं, ये सब दिशायें, गमनागमन में परम सहायक और असीम हैं, ये सब गौएँ जो कि हमें नाना प्रकार का अमृत पिला-पिलाकर पुष्ट कर रही हैं, ये सब ग्राम जिनमें रह कर हम सहयोगी जीवन बिता रहे हैं, ये सभी रथ जिनमें चढ़कर हम अपनी-अपनी संसार-यात्रा अथवा जीवन-यात्रा को निर्विघ्न समाप्त करके शीघ्र ही अपने-अपने लक्ष्य पर पहुँच जाना चाहते हैं, ये प्र-साधन और यह सम्पूर्ण ऐश्वर्य, जो हमें प्राप्त है, सब कुछ किस का है? क्या हमारा? नहीं, वेद का स्पष्ट उत्तर है कि यह सब उस प्रभु का है। मनुष्य को तो इस सम्पूर्ण ऐश्वर्य का सीमित सा प्रयोगाधिकार ही मिला है। यदि कोई इस सब कुछ के विषय में मोह, ममता और राग-द्वेष के वशीभूत होकर, मेरे-तेरे की भावना को भड़काता है, तो वह भारी भूल करता है। हमें वेद का यह उत्तर सदा स्मरण रखना चाहिये। इसके अनुसार ही हमें अपने मन्तव्यों को स्थिर कर लेना चाहिये।

निर्माता और आविष्कारक जन अपने-अपने पदार्थों और आविष्कारों का अभिमान करते हैं। किसी ने उनको अपनी स्वार्थ-सिद्धि का साधन बना लिया है, किसी ने अहंकार-तृप्ति का। परन्तु विचार करके कोई बताये तो सही कि ये निर्मित पदार्थ और आविष्कार, उस महाप्रभु की रचनाओं की अपूर्ण और भूण्डी-सी

नकलें नहीं हैं, तो और क्या हैं? कलाकार मिट्टी का एक आम बनाता है। हम उसकी कला की प्रशंसा करते हैं। परन्तु संसार में कौन ऐसा बुद्धिमान् है, जो मिट्टी का आम खाना पसन्द करेगा? दीपकों की कथा तो पुरानी हो गई। सूर्य के सामने इस महिमामयी बिजली की रोशनी को कौन पूछता है? जिसके सामने बैठ कर हम लिख रहे हैं।

पृथ्वी एक घण्टे में एक हज़ार मील की गति से अपनी कीली पर घूम रही है और वही एक सैकिण्ड में साढ़े उन्नीस मील की गति से सूर्य की परिक्रमा भी कर रही है। पवन, ध्वनि और प्रकाश की किरणों से भी बढ़कर अधिक शीघ्रगामी यह मन है। ऐसी अवस्था में शीघ्रगामी वैज्ञानिक उपकरणों का क्या विशेष महत्त्व रह जाता है? और भी बहुत सी बातें हैं। यह सूर्य हमारे इस सौर-मण्डल का प्रधान अङ्ग है। इसके बिना हमारा सौर-मण्डल कुछ भी कार्य न कर सकेगा। सूर्य-विज्ञान का विस्तार यहाँ करने में हम असमर्थ हैं। परन्तु सूर्य की उपयोगिता को तो हम सभी कुछ न कुछ समझते ही हैं। फिर ऐसे-ऐसे अनेक सूर्य और सौर-मण्डल इस-ब्रह्माण्ड में हैं। कौन उनको बनाता है? कौन उनको चलाता है? कौन उनका नियामक है? वेद का उत्तर है—इन्द्र, एक मात्र इन्द्र।

रात्रि के अन्तिम पहर में, सूर्यागमन से कुछ पूर्व भगवती उषा देवी का आगमन होता है। क्या आपने कभी उषा देवी को देखा है? न देखा हो, तो अब देखें। नित्य-प्रति उषा-दर्शन का दृढ़ व्रत धारण करें। उषा-दर्शन का पुण्य हम—आपको निहाल कर देगा। स्वास्थ्य में, चिन्तन में, जीवन के प्रत्येक सन्दर्भ में, एक नई स्फूर्ति, हमें प्रथम-दर्शन से ही प्राप्त होने लगेगी। उषा-काल में

किसी पहाड़ के ऊपर, किसी नदी के किनारे, किसी सुरम्य बाग में, या किसी खुले मैदान में चले जाओ, और वहाँ जाकर उस लीलामय की लीलाओं को देखो।

आध्यात्मिक-जीवन की जो सर्वप्रथम जोत साधक के हृदय में जगमगाती है, वह भी एक प्रकार की उषा ही है। किसी निराशा के बाद, आशा की जो प्रथम किरण फूटती है, वह भी एक अन्य प्रकार की उषा ही है। पात्र भेद से एवं परिस्थिति भेद से भगवती उषा भी अनेक-रूपा है। इस सूर्य रूपी जीवन-ज्योति का, इस आशामय जीवन-प्रभात का, इस कर्म-बन्धन से मुक्ति मिलने की प्रथम अनुभूति का, जनक या प्रवर्त्तक कौन है? वेद का उत्तर फिर वही है—इन्द्र। विचार करो। हे मनुष्यो! इस काल-प्रवाह का प्रेरक, इस कर्म-भोग-चक्र का संचालक और इस प्रकृति नटी का सूत्रधार, हम-आप सभी का सनातन पिता, वह इन्द्र ही है।

इन्द्र को अपना लो। सब कुछ दो और सब कुछ लो :—

मत गा, मत गा, मत्त भ्रमर! अब,
दुखद भूत का गान।
दुखद-भूत के दुखद गान को,
गा कर के क्या पायेगा तू।
दुखद-भूत के दुखद गान को,
गा कर के पछतायेगा तू।
किसी नव-विकसित कुसुम-अधर पर,
होगा तव अवसान॥
मत गा, मत गा....................

—

[८]

अन्तिम लक्ष्य

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते
परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद् रथमातस्थिवांसा
नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८॥

पद-पाठ

यम् । क्रन्दसी इति । संयती इति सम्ऽयती । विह्वयेते इति विऽह्वयेते । परे । अवरे । उभयाः । अमित्राः । समानम् । चित् । रथम् । आतस्थिऽवांसा । नाना । हवेते इति । सः । जनासः इन्द्रः ॥

शब्दार्थ :—(क्रन्दसी) क्रन्दन करने वाली और (संयती) परस्पर युद्ध करने वाली सेनायें (यम्) जिसको (विह्वयेते) विजय प्राप्ति के लिये पुकारती हैं और (परे) श्रेष्ठ, सच्चे, न्याय-परायण एवं (अवरे) अश्रेष्ठ झूठे, अन्याय- परायण (उभया) दोनों प्रकार के (अमित्राः) एक दूसरे के विरोधी पक्ष भी जिसको सहायता के लिये पुकारते हैं। और (समानम्) एक ही जैसे अथवा एक ही (रथम्) रथ में (आत-

स्थिवांसाः) बैठे हुए यात्री (चित्) भी जिसको (नाना) नाना प्रकार से (हवेते) रक्षा के लिये पुकारते हैं । (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः इन्द्रः) वही इन्द्र है ।

भावार्थ :–हे मनुष्यो ! इन्द्र तो वही है, जिसको युद्ध-लग्न सेनायें आत्मरक्षा के लिये पुकारतो हैं, श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ, जन भी जिससे सहायता की याचना करते हैं। एवं एक दूसरे के शत्रु लोग भी जिससे अपनी-अपनी विजय माँगते हैं। एक ही स्तर पर रहने वाले, और एक ही जैसे साधनों से युक्त लोग भो उसको ही, विविध प्रकार से पुकारते तथा अराधते हैं। यद्यपि पुकारने और आराधना करने वालों की भाषा एवं परिस्थितियों में भेद है, परन्तु वह इन्द्र तो सबका एक ही है।

प्रवचन

कभी-कभी दो व्यक्तियों, दो जातियों, दो दलों या राष्ट्रों में पारस्परिक शत्रुता उत्पन्न हो जाती है। दोनों मरने-मारने के लिये एक दूसरे के आमने-सामने निकल आते हैं। वाणी के बाणों से उनका काम नहीं चलता, तो लात-घूंसे आरम्भ हो आते हैं। इससे भी अधिक बात बढ़ जाये, तो कचहरियों के द्वार खट-खटाये जाते हैं। यदि झगड़ा दो जातियों या दो राष्ट्रों का है, तो दोनों पक्षों के वीर सुसज्जित होकर रणांगन में एक दूसरे का स्वागत करते हैं। अंगारे बरसाते हैं, तलवारें खन-खनाते हैं। गोली-गोले चलाते हैं। रुण्ड-मुण्ड काटते और रक्त बहाते हैं। दोनों ही भारी मार-काट

मचा कर मानवता को आतंकित कर देते हैं। आपस में लड़ने वाले दोनों ही पक्ष ईश्वर से अपनी-अपनी विजय के लिये सहायता की याचना करते हैं। सुख-चैन की अवस्थाओं में तो कोई-कोई बिरले मनुष्य ही ईश्वर का स्मरण करते हैं, परन्तु दुःख की परिस्थितियों में तो सभी, घोर नास्तिक भी ईश्वर को याद किया करते हैं। क्या आपस में लड़ने वाले दोनों पक्ष ईश्वर की सहायता के पात्र हैं ? विचार कीजिये।

जब दो पक्षों में विवाद आरम्भ होता है, तब उनमें से एक सच्चा और दूसरा झूठा, एक श्रेष्ठ और दूसरा अश्रेष्ठ, एक धर्मात्मा और दूसरा दुरात्मा तो होता ही है। दो एक जैसे ही धर्मात्माओं का प्रथम तो झगड़ा ही नहीं होता, और यदि कभी चुगलखोरों की कृपा से झगड़ा हो ही जाये, तो वे शीघ्र ही सम्भल जाते हैं। यह भी हो सकता है कि एक पक्ष पूर्णतया धर्मात्मा न हो, और दूसरा पक्ष भी पूर्णतया दुरात्मा न हो। तब भी तुलनात्मक रूप में कोई कम और कई अधिक धर्मात्मा या दुरात्मा तो होता ही है। अब ईश्वर क्या करे ? दोनों ही शत्रु-पक्ष सहायता की याचना कर रहे हैं। वह किस को सहायता करे ? हमें अपने विषय में धर्मात्मा या दुरात्मा होने की भ्रांति हो सकती है; परन्तु ईश्वर को तो इस प्रकार की भ्रांति कभी हो ही नहीं सकती। वह तो धर्मात्माओं का ही संरक्षण और उदय सदा किया करता है। उसके अटल नियम कभी भी अन्यथा नहीं हो सकते।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई अधार्मिक पक्ष-विजय-लाभ करता हुआ-सा दिखाई देता है। लोग कहते हैं कि पाप जीत रहा है। कोई वृद्धि को प्राप्त करके पुत्र, कलत्र, बन्धु-बान्धव, धन-वैभव प्राप्त कर लेता है। राजपाट का स्वामी बन जाता है। वह

शत्रुओं को भी जीत लेता है। वह उन्नति के चरम-शिखर पर जा पहुँचता है। और फिर ? फिर, वह किसी दैवी-लीला के अनुसार धड़ाम से किसी गहरे गढ़े में धकेल दिया जाता है। उसका सर्वनाश हो जाता है और, उसका नाम-निशान तक भी मिट जाता है। पाप-संहार की यह लीला बड़ी रोमांचकारी और शिक्षाप्रद है। भगवान् की योजना के अनुसार ही इस लीला की प्रवर्त्तना होती है।

लोग रथ में बैठकर कहीं जा रहे हैं। मार्ग में एक दुर्घटना घटित होने लगती है, वा घटित हो जाती है। सभी यात्री एक स्वर में भगवान् से सहायता की याचना करने लगते हैं। नाव की यात्रा में, रेल की दुर्घटना के समय, नभ-यान और जल-यान में संकट का सामना होने पर, ये दृश्य आये दिन उपस्थित होते ही रहते हैं। ऐसा क्यों होता है ? ऐसा इसलिये होता है कि वह भगवान् सभी का सहायक और संरक्षक है। भगवान् के संरक्षक होने का सिद्धान्त मानव-प्रकृति में इतना अधिक बद्धमूल है कि यदि कोई चाहे तब भी इसे हटा ही नहीं सकता। हो सकता है कि जागृति में कोई ईश्वर की सत्ता और महत्ता से इन्कार करे; परन्तु अपनी प्रसुप्त-स्थिति में, अथवा विस्मृति में अर्थात् अपने अन्तर्मन में तो वह भी ईश्वर के संरक्षण का पूर्ण विश्वासी ही होता है। ईश्वर की सहायता और कृपा का आनन्द वह पहिले भी अनेक बार अनुभव कर चुका है। अतः जान में, या अनजान में, वह बारम्बार उसका स्मरण किया ही करता है।

यदि कोई भगवान् की कृपा और सहायता प्राप्त करने का इच्छुक है, तो वह पहिले पात्रता प्राप्त करे। पात्रता के अभाव में

तो उसकी कृपा का प्रकाश हो ही नहीं सकेगा। हृदय-मन्दिर को स्वच्छ करो। मन-बन्दर को वश में करो। इन्द्रियरूपी पशुओं को वश में रखो। पवित्रता, सात्विकता, सरलता और परम-प्रेम का सम्पादन करो। निरन्तर पुरुषार्थ करते रहो। प्रयास में कुछ भी ढील न आने दो। तब एक दिन आयेगा, जब साधक को आशा रूपी उषा के दर्शन प्राप्त होंगे और सफलता रूपी सूर्य जगमगा उठेगा। यही मानव-जीवन की सफलता है। यही प्रभु इन्द्र के साक्षात्कार का प्रकाश है। कोई सफल आत्मा आनन्द-विभोर होकर गा रहा है—

मत गा, मत गा, मत्त भ्रमर अब,
दुखद - भूत का गान।
आशा - उषा का कर स्वागत,
दुख - रजनी का नाश हुआ है।
ज्ञान - रवि चमका घट भीतर,
नव - जीवन - प्रभात हुआ है।
मन में अपने प्रीत बसा ले,
प्रोत - प्रीत, बस प्रीत।
प्रियतम को कभी भूल न जाना,
यही प्रीत की रीत।
मत गा, मत गा, मत्त भ्रमर! अब,
दुखद - भूत का गान।

भक्तों की भाषा में भेद है। उनकी पात्रता में भी उत्तम और अधम का भेद सम्भव है। परन्तु उनके लक्ष्य वा आराध्य में कोई भेद नहीं है। उपासना में प्रकार-भेद होने पर भी सबका प्राप्तव्य तो एक ही है। भाषा-भेद होने पर भी सबका लक्ष्य तो एक ही है। नाम-भेद होने पर भी भक्तों के आराध्य-देव में कोई भेद नहीं है। इतना ही नहीं आराध्य-देव के विषय में तो सभी का अभेद है। यह सभी का एक मात्र अभिप्रेत और आराध्य-देव ही तो इन्द्र है।

अज्ञान-ग्रस्त लोग ईश्वर के अनन्त, गुण, कर्म, स्वभाव का विचार नहीं कर पाते। वे कभी उसकी सत्ता और महत्ता में सन्देह करने लगते हैं और कभी नाम-भेद के कारण वे अनेकानेक देव-देवीवाद की भ्रान्तियों में उलझ जाते हैं। बहु-देववाद और नाना-ईश्वरवाद की कल्पनाओं का रहस्य यही है। स्थिति तब बहुत अधिक बिगड़ जाती है। जब अपनी नासमझी के कारण ईश्वर के ये तथा-कथित भक्त एक दूसरे के सिर फोड़ने लगते हैं।

रात-दिन मन्दिर ओ मस्जिद के हैं झगड़े रहते।
दिल में ईंटें हैं भरी, लब पै ख़ुदा रहता है॥

---

[६]

सर्वोपरि भगवान्

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो
यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव
यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥६॥

पद-पाठ

यस्मात् । न । ऋते । विऽजयन्ते । जनासः । यम् । युध्यमानाः । अवसे । हवन्ते । यः । विश्वस्य । प्रति-ऽमानम् । बभूब । यः । अच्युतऽच्युत् । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

शब्दार्थ :—(यस्मात्) जिसकी सहायता के (ऋते) बिना (जनासः) लोग (न) नहीं (विजयन्ते) विजय को प्राप्त करते । (यम्) जिसको (अवसे) रक्षा के लिये (युध्यमानः) युद्ध करने वाले पक्ष विपक्ष (हवन्ते) पुकारते हैं, (यः) जो (विश्वस्य) सम्पूर्ण विश्व का (प्रतिमानम्) उत्पादक, प्रतिपालक और प्रतिमान = नपना है । (यः) जो (अच्युत्) न डिगने वालों, न हिलने वालों को भी (च्युत्) डिगाने, हिलाने वाला है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः इन्द्रः) वही इन्द्र है ।

भावार्थ :—हे मनुष्यो ! इंद्र तो वही सर्वोपरि भगवान् है, जो कि बड़े-बड़े पहाड़ों आदि को भी धूल में मिला देता है, बड़े-बड़े अभिमानियों को भी कीड़े-मकौड़ों को तरह मसल देता है, जो इस संसार के कण-कण में समा रहा है। युद्ध करने वाले पक्ष-विपक्ष और राष्ट्र जिसको आत्म-रक्षा के लिये पुकारते हैं, और जिसकी सहायता के बिना काई भी विजय को प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रवचन

जो भगवान् के साथ है, भगवान् उसके साथ है। जिसके साथ भगवान् है, उसकी विजय निश्चित् है। जीवन-संघर्ष में विजय प्राप्त करने के लिये मनुष्य को उचित है कि आस्तिक बने। आस्तिक होने के लिये मौखिक स्वीकृति या स्तुति-गान मात्र से काम न चलेगा। आस्तिकों की आस्तिकता का परिचय तो उनके जीवन से, व्यवहार से, विचार से, वाणी से, भाव-भंगी से, संकल्प-शक्ति से और उनके जीवन की प्रत्येक छोटी-बड़ी क्रिया से मिलना चाहिये। कुछ लोग दिखाने के लिये ही ओम्-नाम जपा करते हैं, यह तो दम्भ है। इससे किसी को भक्तजी की पदवी चाहे मिल जाये; परन्तु आत्मिक-शान्ति की प्राप्ति न हो सकेगी। कुछ लोग मुंह में राम और बगल में छुरी की नीति पर चला करते हैं। यह तो धूर्त्तता है।

माला तो कर में फिरे, और जिह्वा मुख मांहीं।
मनवा तो चहुंदिशि फिरे, यह तो सुमिरन नांहीं॥

यूं तो नास्तिक जन भी भगवान् के आश्रय और उसकी कृपा से ही जीवन-यापन करते हैं, तथापि वह हर्ष, उत्साह एवं आनन्द और मस्ती, जो कि केवल मात्र आस्तिकों का ही भाग है, नास्तिकों के भाग्य में वह कहां है ? हां, यह भी हमें स्वीकार करना चाहिये कि दम्भी और धूर्त्त प्रकार के तथा-कथित आस्तिकों की अपेक्षा तो वे लोग ही अधिक आस्तिक हैं, जो कि मुख से तो ईश्वरीय-सत्ता को स्वीकार नहीं करते, परन्तु जिनका हृदय विशाल मन-शान्त, आचार शुद्ध और विचार पवित्र हैं।

प्रत्येक विजय, वह छोटी हो, या बड़ी, और चाहे जिस क्षेत्र में हो, जो भी मनुष्य को प्राप्त होती है, वह ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होती है। ईश्वरीय-कृपा और सहायता के बिना तो न कभी किसी को विजय मिली है, न मिलेगी। तथाकथित आस्तिक शिकायत के स्वर में बोलते हैं--हमें अब तक भी विजय नहीं मिली। काश ! वे आत्म-निरीक्षण करते और ईश्वरीय-सत्ता के विषय में जो अविश्वास चोर के समान उनके हृदय में घुसा बैठा है, उसे निकाल कर बाहिर कर देते। काश ! वे अपनी करनी और कथनी में एकरूपता स्थापित कर सकते।

जब कोई व्यक्ति, जाति, वर्ग या राष्ट्र युद्ध में लिप्त हो जाता है, तब वह सहायता के लिये भगवान् को पुकारता है। दुःख में तो सब कोई भगवान् को याद करते हैं ? सुख में वे उसे क्यों भूल जाते हैं ? क्योंकि :--

दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करें, दुख काहे को होय॥

एक प्रकार से तो दुःख भी वांछनीय ही है :--

सुख के माथे सिल पड़े, नाम हृदय ते जाये।
बलिहारी वा दुःख के, नाम ही नाम रटाय ॥

दुःख का एक लाभ और है :—

रहिमन विपदा तू भली, जो थोड़े दिन होय।
हित अनहित या जगत में, बूझ परत सब कोय ॥

इसी भाव को एक कवि यूं दर्शाता है :—

गरदिश-ए अय्याम ! तेरा शुक्रिया।
हम ने हर पहलू से दुनिया देख ली ॥

भगवान् तो इस अखिल विश्व का सनातन सूत्रधार है ? उसने इस विश्व के प्रत्येक कण को तोल रखा है। इसके चप्पे-चप्पे को उसने नाप रखा है। इस का कोई भी रहस्य उससे अज्ञात नहीं है। वह इस के प्रत्येक कण में समा रहा है, और यह सम्पूर्ण प्रपंच उस में ही वर्तमान है। यदि कोई उस के विराट रूप को देखने का इच्छुक हो, तो वह इस सम्पूर्ण प्रपंच का देखे। यदि दर्शन की अभिलाषा सच्ची और उत्कट होगी, तो यह दर्शन—मेला अवश्य ही प्रत्येक आस्तिक के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना का रूप धारण करेगा। इस के साथ ही यह भी सम्भव है कि किसी सच्चे स्नेही का प्रभु—मिलन—प्रसंग एक बड़े पर्व का रूप धारण करे, और वह चिरकाल तक जिज्ञासु-संसार का पथ-प्रदर्शन करता रहे।

बड़े-बड़े अत्याचारी और नास्तिक संसार में हो चुके हैं। आज वे सब कहां हैं ? जो अहंकारी बन कर कहते थे—हमें कोई हटा नहीं सकता, हमें कोई मिटा नहीं सकता, डिगा नहीं सकता, दबा नहीं सकता, हरा नहीं सकता, उन सबकी शेखी पल की पल

में किरकिरी हो गई । हे मनुष्यो ! उससे डरो । वह बड़ा बलवान् है ।

जिनके महलों में हजारों रंग के फानूस थे।
झाड़ उनकी कब्र पर हैं, और गिशां कुछ भी नहीं ।।

और—

कहां गये वे रावण योद्धा, कहाँ गये वे राजा नल ।
पल में सागर सूखे देखे, पल में देखा थल से जल ।।
कहां गये वे दारा सिकंदर, कहां गई वह सब्ज परी ।
अजल के मुंह में सभी चले गये, खुश्की रही न तरी रही।।

कैसा करुण दृश्य है ?

जहां था जमशेदी दरबार, शान से होता था मधु-पान ।
वहाँ स्वच्छंद घूमते सिंह, वहां स्वच्छंद घूमते श्वान ।।

देखो—

माटी सब को खा गई, रावण रहा न राम ।
बाकी उन के रह गये, दूषित - भूषित काम ।।

हे मनुष्यो ! यदि तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो, सुखी और शांत जीवन-यापन करना चाहते हो, यदि तुम सब प्रकार के भव-तापों से बचना चाहते हो, तो उस महा प्रभु की महिमा के गीत गाओ । गाओ, सच्चे हृदय से गाओ । उसकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना नित्यप्रति विधिपूर्वक किया करो । धर्म का मर्म यही है। जीवन का धर्म यही है। अभ्युदय और निश्रेयस का साधन यही है। यह इन्द्रोपासना ही तो सच्ची जीवन-कला है ।

वही परमेश्वर है !

य: शश्वतो मह्येनो दधानान्
अमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
य: शर्धते नानुददाति शृध्यां
यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्र: ॥१०॥

पद-पाठ

य: । शश्वत: । महि । एन: । दधानान् । अमन्य-मानान् । शर्वा । जघान । य: । शर्धते । न । अनुऽददाति । शृध्याम् । य: । दस्यो: । हन्ता । स: । जनास: । इन्द्र: ॥

शब्दार्थ :—(य:) जो (शश्वत:) बल अथवा बहु संख्या के आधार पर (महि) बड़े (एन:) पाप को (दधानान्) धारण करने वालों और (अमन्यमानान्) सत्य, न्याय, एवं हित की बात को न मानने वाले नास्तिक लोगों को (शर्वा) अपनी संहारक शक्ति के द्वारा (जघान्) मार गिराता है; (य:) जो (शर्धते) हिंसा आदि पापाचरण के द्वारा बढ़ने की इच्छा रखने वाले मनुष्य को (शृध्याम्) वृद्धि, उन्नति (न) नहीं (अनुददाति) देता है और (य:) जो (दस्यो:) दुष्ट भावों,

दुर्विचारों का (हन्ता) हनन करने वाला है, (सः जनासः इन्द्रः) हे मनुष्यो ! वही इन्द्र है।

भावार्थ :—जो लोग बल प्राप्त करके अथवा अपनी बहु संख्या के आधार पर पाप कर्मों में लिप्त हो जाते हैं, वह प्रभु उन अभिमानी, पापी और नास्तिक पुरुषों को नष्ट कर देता है। हिंसकों की हिंसा को वह चलने नहीं देता। पापियों की उन्नति को वह रोक देता है। दुष्ट पुरुषों और सब प्रकार की दुष्टताओं का वह प्रसिद्ध संहारक है। हे मनुष्यो ! वही इन्द्र है।

प्रवचन

जब मनुष्य के पास प्रयोजन से अधिक धन-बल, जन-बल, कल बल, और शारीरिक-बल एकत्रित हो जाता है तब यदि वह आस्तिक और भक्तिवादी नहीं है, तो वह अवश्य ही अहंकारी प्रमादी, कर्त्तव्यभ्रष्ट, आत्म-श्लाघी, विद्वेषी, सज्जन-पीड़क, दुर्बल-घाती, और अनेक प्रकार के दुष्टों का अनुयायी, साथी वा नेता बन जाता है। तब वह सभी उत्तम मर्यादाओं का उल्लंघन करने लगता है। ऐसा करने में वह अपना गौरव समझता है। इतना ही नहीं, उत्तम मर्यादाओं को तोड़ना वह अपना अधिकार समझने लगता है। उत्तम मर्यादाओं को तोड़ने से सस्ती प्रसिद्धि तो उसे मिलती ही है, इसके साथ ही जन साधारण की ओर से विरोध न होने के कारण, उसे अनुचित बढ़ावा भी मिलता है। और बारम्बार के अभ्यास वशात् उसका स्वभाव भी अधिकाधिक

दुष्टतापूर्ण होता चला जाता है। ऐसे-ऐसे सहस्रों अत्याचारियों और मर्यादा-भंजकों के नाम इतिहास हमें बताता है। कभी छोटे और कभी बड़े रूप में ऐसे-ऐसे प्रसंगों का पुनरावर्तन संसार में होता ही रहता है। सज्जन लोग तो उन दुष्टों से वार्तालाप करने में भी डर का अनुभव करते हैं। राजपुरुष भी लोभ, भय, वा प्रमादवश दुष्टों का विरोध उचित प्रकार से नहीं करते। कभी-कभी तो सज्जनों के बड़े-बड़े सामूहिक प्रयास भी दुष्टों के सामने विफल हो जाते हैं। महापाप और घोर अनाचार सब ओर फैल जाता है। करुण-क्रन्दन और हाहाकार से दिग्दिगन्त व्याप्त हो जाता है।

तब, प्रभु की ऐन्द्र-शक्तियां दुष्टों का संहार और सज्जनों के परित्राण एवं धर्म की संस्थापना के लिये विशेष रूप से कार्योन्मुख दिखाई देने लगती हैं। प्रभु के ढंग निराले हैं। हम-आप के समान डण्डा उठाकर मारने की आवश्यकता ईश्वर को नहीं है। न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्। दुष्टों की दुष्ट बुद्धि ही उनकी निरोधक और विनाशक बन जाती है। शिकारी खुद ही अपने जाल में फंस कर छटपटाने लगता है। बोयेगा सो काटेगा। करेगा, सो भरेगा। खोदेगा, सो पड़ेगा। कोई भी पापी दण्ड-भोग और पाप-परिशोध की प्रक्रिया से बच नहीं सकता। इस दण्ड-भोग का प्रदाता और पाप-प्रतिशोध की प्रक्रिया का प्रवर्त्तक और कोई नहीं, वह इन्द्र ही है।

जो ईश्वर को नहीं मानते, जो न्याय और नियम को नहीं मानते, जो लोकोपकारी उत्तम मर्यादाओं को नहीं मानते, जो हितवचन को नहीं मानते, जो घोर नास्तिक, उद्दण्ड और उच्छृंखल,

अहंवादी, परपीड़क, और स्वार्थी हैं, उनको वह प्र पल की पल में मार गिराता है :—

जिहि सिर चुन-चुन बान्धत पागा ।
तिहि सिर चोंच संवारत कागा ।।

ओ अभिमानी !

इक दिन ऐसा आयेगा, जंगल होय निवास ।
ऊपर तेरे हल चले, पशु चरेंगे घास ।।

एक नीतिकार से किसी ने पूछा—इस संसार की स्थिति का हेतु क्या है ? वह बोला—दुष्टों के दुष्ट विचार कभी भी पूर्ण नहीं होते। इसी से यह संसार वर्तमान है और इसका कार्य नियमानुसार चल रहा है। दुष्टों के दुष्ट मनोरथों की पूर्ति में बाधक कौन है ? वेद का उत्तर है :—

प्रभु इन्द्र दुष्टों की दुष्ट वृत्तियों को कुण्ठित कर देते हैं। प्रभु के राज्य में अत्याचारियों को न तो ढील दी जाती है, और न हो प्रोत्साहन ।

वैदिक-भाषा में सभी दुष्ट दलों का समावेश 'दस्यु' इस एक ही शब्द में हो जाता है। जो उत्तम मर्यादाओं के संरक्षक और प्रतिपालक हैं, वेद उनको 'आर्य' की पदवी प्रदान करता है। और जो उत्तम मर्यादाओं के द्वेषी, भंजक एवं निन्दक हैं, वेद दस्यु कहकर उनकी भर्त्सना करता है। शील और स्वभाव के आधार पर

वेद मानव जाति के केवलमात्र ये ही दो भेद स्वीकार करता है। जात-पात, छूत-छात, रंग और नस्ल एवं प्रान्तीयता और प्रादेशिकता के सभी झगड़े-बखेड़े तो मनुष्यकृत हैं। ये मनुष्यकृत भेद-भाव वेद को सर्वथा ही अमान्य हैं, क्योंकि इनसे मानवता का घोर अपमान होता है। यहां एक बड़ी बात विशेष ध्यान देने योग्य है। यदि चाहे तो कल का दस्यु आज ही आर्य पदवी को प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार दुराचार-रत होने पर आज का आर्य भी सभी नागरिक अधिकारों से वंचित कर के, कल भर्त्सना पूर्वक दस्यु-दल में धकेला जा सकता है। दस्यु-दलों के उन्नति करने, श्रेष्ठता प्राप्त करने अर्थात् शुद्धाचारी बनकर आर्यों के समान ही प्रतिष्ठा प्राप्त करने में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। जो लोग नाम मात्र के ही आर्य हैं, और जिनका चाल-चलन आर्यत्व के प्रतिकूल है, वे तो दम्भी, पापी, अपराधी और दण्डनीय हैं। वे तो ऐसे ही हैं, जैसे काठ के केहरी।

हे मनुष्यो! जो सर्वोपरि सत्ता, समाज-कण्टकों का सम्यक् निरोध करती है, जो दुष्टताओं को उनके सिर उठाते ही, कुचल देती है, जो सज्जनों की सहायक, उन्नायक और पथ-प्रदर्शक है उसी का नाम इन्द्र है। वही परमेश्वर है।

———

[११]

विजय का मूल-मन्त्र

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं
चत्वारिंश्यां शरद्यन्ववविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान
दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥

पद-पाठ

यः । शम्बरम् । पर्वतेषु । क्षियन्तम् । चत्वारिंश्याम् । शरदि । अनुऽअविन्दत् । ओजायमानम् । यः । अहिम् । जघान । दानुम् । शयानम् । सः । जनासः । इन्द्रः ।।

शब्दार्थ :—(यः) जो (पर्वतेषु) पहाड़ों में (क्षियन्तम्) क्षति-ग्रस्त होकर रहने वाले, पिघलने वाले (शम्बरम्) बरफ को, जल को (शरदि) वर्ष भर तक, प्रतिवर्ष (चत्वारिंश्याम्) अन्न उपजाने वाले खेतों में (अनु-अविन्दत्) अनुकूलता से पहुँचाता है, (यः) जो (ओजायमानम्) बल से भरे हुए (दानुम्) कष्ट पहुँचाने वाले, चारों ओर से घेर कर पड़े हुए (अहिम्) मेघ, अज्ञान, अन्धकार,

आक्रमणकारी को (जघान) मार गिराता है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः इन्द्रः) वह इन्द्र है।

भावार्थ :–जो पहाड़ों में जमे हुए जल को पिघलाकर अनुकूलता से, वर्षभर पर्यन्त, अथवा प्रतिवर्ष, खेतों में पहुँचाता रहता है, जो खूब बढ़े-चढ़े और चारों ओर से घेर कर जनता को पीड़ित करने वाले मेघ, अज्ञान, अविद्या, अन्धकार तथा आक्रमणकारी शत्रुवर्ग को मार कर नष्ट कर देता है, हे मनुष्यो ! वही इन्द्र है।

प्रवचन

जल का मुख्य निवास-स्थान पहाड़ों पर है, या सागरों में—इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। सूर्य वाष्प बना कर सागरों में से जल को उड़ाता है, और मेघों के रूप में जहां-तहां बरसते हुए जल के वे बड़े-बड़े भण्डार गगन-चुम्बी पहाड़ों की चोटियों पर चढ़कर बेठ जाते हैं। बरफ के रूप में ठोस रूप धारण करके वे जल पहाड़ों पर ही रहने लगते हैं। परन्तु इसके साथ ही वे पिघलते और बहते भी रहते हैं। वे सागरोन्मुख होकर दौड़ा भी करते हैं। सागरों के जल पुनरपि सागरों में पहुँच जाते हैं, पुनरपि वे वाष्प बनते हैं, बरफ बनते हैं, पिघलते हैं, बहते हैं, दौड़ते हैं, और सागरों में पहुँचते हैं। बारम्बार ऐसा ही होता है। यह क्रम सनातन काल से इसी प्रकार चला आ रहा है। साधारणतया तो अपने स्वभाव के अनुसार जल नीचे को ही बहता है, परन्तु मेघों के रूप में तो वह गगन में विहार करता हुआ

भी दिखाई देता है। साधारणतया तो निम्नतर स्तरों और आधारों में ही जल ठहरता है, परन्तु बरफ के रूप में वह हमारे सामने पहाड़ों की चोटियों पर बहुत अधिक मात्रा में प्रत्यक्ष ही लदा पड़ा है। जल के ये विभिन्न रूप, विकार या आकार-प्रकार अथवा व्यवहार प्रभु इन्द्र की सामर्थ्य सूचक लीलायें ही तो हैं।

पहाड़ों पर जल की अपार राशि सुरक्षित है। सागर के खारे जल की अपेक्षा पहाड़ों का जल मीठा भी है, श्रेष्ठ और स्वादिष्ट भी। बड़ी मात्रा में सिंचाई के लिये खेतों में जल को ले जाना मानव की शक्ति से परे है। परन्तु पहाड़ों का जल तो स्वयमेव एक निर्धारित मात्रा में खेतों की ओर दौड़ा चला आ रहा है। यदि मनुष्य इस देव-लीला की ओर थोड़ा ध्यान दे, तो संसार में वर्तमान की अपेक्षा धन-धान्य की वृद्धि बहुत अधिक होने लगे। प्रभु ने खेती-बाड़ी के उपयोग और मानव-जाति के हित के लिये ही पर्वतों के ऊपर जल के भण्डार स्थापित किये हैं।

पौराणिक-साहित्य में शम्बर नाम के एक दस्यु राजा का उल्लेख मिलता है। जब शम्बर के उत्पात बहुत अधिक बढ़ जाते हैं, तब इन्द्र शम्बर का वध कर देता है। इस कथा के आधार पर अल्प-श्रुत लोग वेद में इतिहास का आरोप किया करते हैं। हो सकता है कि कभी कोई शम्बर नामक दस्यु वा व्यक्तिविशेष संसार में रहा हो। और यह भी सम्भव है कि किसी इन्द्र नामक नृपति विशेष ने ही उस का वध किया हो। परन्तु वेद का यह वर्णन किसी ऐतिहासिक दस्यु शम्बर या ऐतिहासिक राजा इन्द्र के विषय में नहीं है। वैदिक शम्बर तो आज भी मेघ बनकर उड़ा-उड़ा फिरता है। वह उड़ता है और पहाड़ों पर चढ़कर सो भी जाता है। इस प्रकार मेघ, हिमगिरि और विपुल जल-भण्डार ही वेद प्रति-

पादित शम्बर है। हिम और मेघों का विदारक तो सूर्य प्रसिद्ध ही है। शम्बर और इन्द्र का यह अलंकार भौतिक पक्ष में मेघों, हिम-भण्डारों तथा सूर्य के कतिपय व्यवहारों की ओर संकेत करता है। इन्द्र का एक अर्थ सूर्य भी है। इन्द्र का भी इन्द्र ईश्वर है। इसीलिये ईश्वर का एक नाम महेन्द्र भी है।

शम्बर और इन्द्र अर्थात् मेघों, हिम-भण्डारों और सूर्य का वह संघर्ष ऋतुओं के साथ-साथ चाल बदल-बदल कर वर्ष भर तक चलता रहता है। प्रतिवर्ष एक क्रम का पुनरावर्तन होता है। सनातन काल से ही इन्द्र और शम्बर का यह संघर्ष चला आ रहा है। इस संघर्ष के परिणाम स्वरूप कभी-कभी मनुष्य-जाति एवं अन्य प्राणी वर्गों को कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ जाता है, परन्तु अन्त में तो इस से मानव जाति एवं सम्पूर्ण प्राणी वर्ग की सुख-समृद्धि में वृद्धि ही होती है।

मेघ का एक अन्य नाम अहि भी है। जब घनघोर घटायें घिर आती हैं, बादलों की गम्भीर और भयानक गड़गड़ाहट होने लगती है, विजलियां चमकती हैं, जल बरसता है। मार्ग जलपूर्ण हो जाते हैं। मेघ मालायें प्रचण्ड और क्रुद्ध रूप धारण करती हैं, तब इन्द्र की शक्तियां अपना काम आरम्भ कर देती हैं। सहसा ही पटाक्षेप या दृश्य-परिवर्तन होता है। मेघ-मण्डल धराशायी हो जाते हैं, या दुम दबाकर भाग जाते हैं। कहना न होगा कि इन्द्र और शम्बर के इस सनातन-संघर्ष में प्रत्येक बार अन्तिम विजय तो इन्द्र की ही होती है।

जब अविद्या और अन्धकार के आन्धी तूफान संसार में उठ खड़े होते हैं और अपने प्रचण्ड वेग से मानवता की हत्या करने

लगते हैं, तब कोई सत्यशील, दृढ़व्रती, सत्यशोधक महान् पराक्रमी महापुरुष सत्य की सिरोही तानकर मैदान में निकल आता है। सम्पूर्ण अविद्या और अन्धकार को छिन्न-भिन्न करके, वह सत्य ज्ञान के प्रकाश को पुनरपि सर्वत्र फैला देता है। यह भी ऐन्द्र-शक्ति का ही एक चमत्कार है।

सचाई छिप नहीं सकती, बनावट के असूलों से ।
कि खुश्बू आ नहीं सकती, कभी काग़ज फूलों से ।।

एवमेव :—

सच्चों की तो इज्जत ही बढ़ेगी, जो करें जांच ।
मशहूर मसल है कि नहीं सांच को कुछ आंच ।।

कोई अन्यायी, अत्याचारी, लोलुप और क्रूर मनुष्य चोरों, डाकुओं, हत्यारों के दल के दल साथ लेकर किसी समृद्ध, शान्त, सज्जन और पाशविक बल से विमुख या रहित व्यक्ति, जाति अथवा राष्ट्र को घेर लेता है। कुछ काल तक वह मनमाने अत्याचार भी करता है। सहसा ही एक नई हलचल-सी होती है। धर्म-रक्षक एवं दुर्जन-मुख-भंजक शक्तियां मैदान में आ उपस्थित होती हैं। दुष्ट अपने किये का फल पाते हैं, मारे जाते हैं, या दुम दबाकर भाग जाते हैं। जैसे दस्यु-शक्तियां अनेक रूपा हैं, वैसे ही ऐन्द्र-शक्तियां भी अनेक रूपा हैं। ऐन्द्र-शक्तियों की विजय का एक सनातन-हेतु भी है।

सत्यमेव जयते, नानृतम् ।

विजय सत्य की ही होती है, झूठ की नहीं।

—∞∞—

इन्द्र का इन्द्रत्व

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान्
अवास्रृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुः
द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२॥

पद-पाठ

यः । सप्तऽरश्मिः । वृषभः । तुविष्मान् । अवऽअसृजत् । सर्तवे । सप्त । सिन्धून् । यः । रौहिणम् । अस्फुरत् । वज्रऽबाहुः । द्याम् । आऽरोहन्तम् । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

शब्दार्थ :—(यः) जो (सप्तरश्मिः) सात रंगों वाला है, सब रंगों की किरणों वाला है । (वृषभः) जो सबका समृद्धिदाता, सुख और जल आदि की वर्षा करने वाला और (तुविष्मान्) सर्वशक्तिमान् है । जो (सप्त) बहने-दौड़ने वाले, गतिशील (सिन्धून्) जलों की (सर्त्तवे) बहने के लिये, उड़ने के लिये (अव + आ + असृजत्) नीचे और ऊपर की दिशाओं में नियोजित करता है, जो (वज्रबाहुः) वज्र के समान सुदृढ़ हाथों वाला, अथवा सभी कार्यों को सुनिश्चित् रूप से सिद्ध करने वाला है और (यः) जो (रौहिणम्) उत्पन्न होने = उगने वाली सब बनस्पतियों

(द्यामारोहन्तम्) ऊपर की ओर बढ़ने के समय (अस्फुरद्) प्रेरणा या स्फूर्ति प्रदान करता है, (जनासः) हे लोगो ! (सः इन्द्रः) वह इन्द्र है ।

भावार्थ :—सभी रंग जिसके रंग हैं, जो सम्पूर्ण ज्ञान-धाराओं का प्रवर्त्तक, आनन्द, ऐश्वर्य और ऋद्धि-सिद्धि का दाता, सर्वशक्तिमान् है, जो गतिशील जलों को कभी बहाता या पिघलाता है, और कभी बाष्प बनाकर उड़ाता है, जो सुदृढ़ और सब का नियामक है, जो वनस्पतियों को उगाता, बढ़ाता और स्फूर्ति देता है, हे मनुष्यो ! वही महाप्रभु इन्द्र है ।

प्रवचन

नील, पीत, हरित, रक्त, श्वेत, श्याम और बभ्रु वा अरुण रंगों से युक्त चंचल किरणें आकाश में झिलमिला रही हैं । किरणों के सात रंग हैं । सात रंगों के सम्मिश्रण और उनकी न्यूनाधिक मात्राओं के आधार पर और भी बहुत से रंग दृष्टि—पथ में आ रहे हैं । ये किरणें कैसे-कैसे उपकार कर रही हैं ? और, क्या-क्या खेल, खेल रही हैं ? कैसे-कैसे टेढ़े-मेढ़े मार्गों से यात्रा करके, करोड़ों मीलों को लांघ कर ये कहां-कहां से यहां आ रही हैं ? यह सब हम क्या जानें ? हां, इतना हम समझ चुके हैं कि कोई चतुर खिलाड़ी परोक्ष में है । वही इन किरणों का ताना-बाना फैला रहा है । वही इनको विविध प्रकार के खेल, खिला रहा है । इस किरणों के जमघट में कोई सूर्य-किरण है, कोई चन्द्र-किरण । कोई किसी अन्य नक्षत्र की किरण है । यदि यह किरणों वा रश्मियों

का व्यापार न हो, तब तो संसार के ये सभी पदार्थ ऐसे रूपहीन पिण्ड बन जायें कि जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। तब तो इनकी पृथक्-पृथक् स्थिति की कल्पना भी न हो सकेगी। बड़ा गड़बड़-घोटाला हो जायेगा। क्योंकि ये किरणें ही तो सभी पदार्थों को उन-उन के रूप प्रदान करती हैं। इसके साथ ही द्रष्टाओं को दर्शन-क्षमता भी तो इन किरणों से ही प्राप्त होती है। ये किरणें न हों, तो किसी को रूप की अनुभूति भी न हो।

जैसी ये प्रकाश-रश्मियां हैं, वैसी ही विचार-तरंगें भी हैं। उनसे भिन्न, वैसी ही ध्वनि-तरंगें भी हैं। मनोविज्ञान-शास्त्र की रीति से विचार-तरंगें अत्यन्त प्रशस्त रूप में समाने आती हैं। इसी प्रकार ध्वनि-तरंगें भी संगीत-शास्त्र की रीति से सात स्वरों के मिश्रित और अमिश्रित स्वरों में गूंजती हुई सर्वत्र माधुर्य बखेर रही हैं। विचार-तरंगों के अभाव में मानव-जाति के; नहीं-नहीं, प्राणी-मात्र के मानसिक व्यापारों का लोप हो जायेगा। ध्वनि की तरंगों के अभाव में संगीत-विद्या का ही लोप न होगा, अपितु वाणी, श्रोत्र और कहने-सुनने के सभी व्यवहार लुप्त हो जायेंगे। परन्तु ये सब ता हमारी क्लिष्ट-कल्पनायें ही हैं। ऐसा कुछ होगा ही नहीं। वह महाप्रभु इन्द्र इन प्रकाश-रश्मियों, विचार-वीथियों, ध्वनि-तरंगों, विद्युत-लहरों और इसी प्रकार की अन्य अनेक ज्ञात या अज्ञात तरंग-मालाओं का प्रसारक, संवाहक, रक्षक और नियन्ता है। वह सर्वोपरि विजेता इन्द्र है। उसके व्यवहारों में कौन बाधा डाल सकता है?

वैदिक-संस्कृति के दो अत्यन्त प्रसिद्ध प्रतीक हैं—एक गौ, दूसरा वृषभ। गौ आध्यात्मिक आदर्श, ध्येय वा प्रकर्ष का प्रतीक है, और वृषभ सामाजिक आदर्श, ध्येय वा प्रकर्ष का। यूं

तो गौ का सर्व प्रसिद्ध और यौगिक अर्थ प्रकाश की किरणें ही होता है; परन्तु आध्यात्मिक जीवनमें प्रकाश, ज्ञान, आलोक, ज्योति और ऐसे ही अन्य ज्ञान तथा प्रकाश के प्रतिबोधक शब्द एक ही अर्थ के सूचक हैं। अध्यात्मवादियों की साधना और तपश्चर्या, उसका क्षेत्र और स्वरूप चाहे जो हो, भौतिक-विज्ञान हो, मनो-विज्ञान हो, संगीत-विज्ञान हो, या और कोई प्रगति-प्रकार हो, अपने व्यापक अर्थ में यह सब कुछ गोपालन वा गौओं का व्यापार ही तो है।

वृषभ ऋद्धि-सिद्धि और सम्पन्नता का सूचक है। जो आनन्द बरसाता है, धन बरसाता है, धान्य बरसाता है, अभावों को मिटाता है जीवन-रथ को खींचकर सफलतापूर्वक उच्च लक्ष्य पर पहुँचाता है। जिसकी विद्यमानता में कोई रोग, कोई अभाव, कोई दौर्बल्य और मूढ़-विचार मनुष्य को सताता नहीं, जो जीवन को शान्त, स्निग्ध, सन्तुलित, सुसमन्वित और सबल दर्शनीय एवं वांछनीय रूप प्रदान करता है, वह तत्त्व वृषभ है। वृषभ भाव या विचार भी हो सकता है, व्यक्ति या साधन भी। हां, उसमें वृषभत्व अर्थात् जीवन को उन्नत बनाने का सामर्थ्य अवश्य हो।

प्रकाश-रश्मियों का थोड़ा विचार ऊपर किया गया। जलों का विचार पूर्व प्रकरणों में हो चुका। प्रकाश-तरंगों के साथ जल तरंगों के विचार का भी समावेश कर लीजिये। एक बार फिर नदी, नालों, पर्वत-शिखरों और गहन-गम्भीर मेघ-मालाओं तथा सुविकसित रसों, अर्थात् स्वादोंका विचार भी यहां पर अभिप्रेत है। साहित्यिक रसों का समावेश मानसिक व्यापारों में हो जाता है। इन्द्र प्रभु की शक्तियां कहां-कहां क्या-क्या, किस-किस, रूप में, कैसे-कैसे अद्भुत कार्य कर रही हैं? ये प्रश्न हैं, जो कि सनातन-काल से ही जिज्ञासु जनों, भक्तवर्गों और विद्वद् समाजों को

चकित, भ्रमित, उत्साहित और स्तब्ध करते चले आ रहे हैं। मानवता के हित के लिये यह विचार-विमर्श जितना शीघ्र सम्पन्न हो जाये, उतना ही अच्छा है। इस विचार-विमर्श के परिणाम स्वरूप ही मानव का कल्याण-मार्ग प्रशस्त हो सकेगा। ओ असीम के उपासक! ओ अनन्त के राही! अपना पथ पहिचान, अपना लक्ष्य पहिचान, अपने स्वरूप को पहिचान। तू एक बून्द है, तो इसकी क्या चिन्ता? आत्म-समर्पण के द्वारा एक बून्द भी सागर को प्राप्त कर लेती है। तू भी चिन्तन और उपासना के द्वारा उस असीम को प्राप्त कर लेगा। जीवन की सार्थकता आत्म-समर्पण में है।

कृषक जन हल, बैल, कस्सी, कुल्हाड़ा, द्रान्ती, खुरपा आदि साधनों से खेत की जुताई, बुवाई, नलाई, सिंचाई, उगाई और कटाई आदि-आदि महत्वपूर्ण कर्मों का सम्पादन करते हैं। वे हमारे लोकप्रसिद्ध अन्नदाता हैं। महाप्रभु इन्द्र भी तो चतुर कृषक के समान ही इन सम्पूर्ण व्यापारों का सम्पादन कर रहा है। वह कृषकों का भी कृषक, और अन्नदाताओं का भी अन्नदाता है।

वानस्पतिक-जगत् पर दृष्टिपात करो, और इसके साथ ही कर्म-भोग-चक्र का भी विचार करो। देखो—क्या बोया जा रहा है? क्या काटा जा रहा है? क्या उत्पन्न हो रहा है? और किसके लिये वह वृद्ध-खेतल-इन्द्र ये सब आयोजन कर रहा है? एक-एक पौदे का, एक-एक फल-फूल और मूल का, सम्यक् विचार कर्त्तव्य है। जो हितकारी और आरोहण करने योग्य है, उसी का पोषण इस संसार-क्षेत्र में हो रहा है, जो अहितकर और आरोहण करने में असमर्थ है, उसका उच्छेदन यहां हो रहा है। वज्रहस्त होकर महाप्रभु इन्द्र सब क्रियाओं का अनुष्ठान कर रहे हैं। छोटी से छोटी प्रक्रिया पर भी उनका पूरा-पूरा ध्यान है। उनके व्यापारों में भूल-चूक तो कभी होती ही नहीं। यह है—इन्द्र का इन्द्रत्व।

[१३]

वह महान् है !

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते
शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुः
यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१३॥

पद-पाठ

द्यावा । चित् । अस्मै । पृथिवी इति । नमेते इति । शुष्मात् । चित् । अस्य । पर्वताः । भयन्ते । यः । सोमऽपाः । निऽचितः । वज्रऽबाहुः । यः । वज्रऽहस्तः । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

शब्दार्थ :—(द्यावा) द्युलोक और (पृथिवी) पृथ्वी लोक (चित्) भी (अस्मै) इसके लिये (नमेते) नमस्कार करते हैं, इसकी व्यवस्था के अनुसार भ्रमण करते हैं । (अस्य) इसकी (शुष्मात्) शक्ति से (पर्वता) पर्वत् (चित्) भी (भयन्ते) डरते हैं । (यः) जो (सोमपा) आनन्द, मस्ती, सफलता, सुष्ठुता, सुख, शान्ति और शुभ्रता आदि सद्गुणों का पालक एवं प्रसारक है, (निचितः) जो अपने स्वरूप में पूर्ण, चेतन, अटल और विकार रहित है, (वज्रबाहुः) जो अपनी कठोर भुजाओं से सभी

का नियमन करता है, (यः) जो (वज्रहस्तः) श्रेष्ठ साधनों और संहारक शक्तियों से युक्त है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वही (इन्द्रः) इन्द्र है।

भावार्थ :—हे मनुष्यो ! वह इन्द्र है। द्युलोक और पृथ्वी लोक भी उसे नमस्कार करते हैं और उसकी व्यवस्था में चलते हैं। बड़े-बड़े पर्वत भी उससे डरते हैं। वह शुभ गुण, कर्म, स्वभाव-समूह का पालक, पोषक और प्रसारक है। वह सर्वशक्तिमान् और सबके शुभाशुभ कर्मों का फल-प्रदाता है। वह एक, अखण्ड, विकार-रहित, शुद्ध एवं चेतन है।

प्रवचन

दिव्य नमस्कारों की एक सनातन-परम्परा हमारे दृष्टि-पथ में आती है। द्युलोक उस इन्द्र को नमस्कार कर रहा है। यह पृथ्वी उसे नमस्कार कर रही है। अन्तरिक्ष उसके सामने नतमस्तक है। लोक-लोकान्तरों में उस के प्रति-नमस्कार भेंट करने की धूम-सी मच रही है। क्या है यह नमस्कार ? और क्यों इस का अनुष्ठान किया जा रहा है। नमस्कार आत्म-समर्पण की एक वैदिक-प्रक्रिया है। अथवा यूं कहें कि प्रेम-पक्ष की यह एक दिव्य-कला है। अथवा यूं कहें कि मनोमय एवं विज्ञानमय-जगत् में हो रहे आत्म-दान का यह एक स्थूल रूप है। अथवा यह एक सच्चा-सौदा है, जिसमें अपना थोड़ा-सा सब-कुछ देकर, साधक उस असीम और अनन्त को, एवं उसके सब कुछ को प्राप्त कर लेता है। यह एक प्रशस्त व्यापार है, जिसमें लाभ है। यह क्या है ? और क्यों है ? ऐसा कह कर, और दूर खड़े होकर तमाशा देखने वाले लोग तो

यथार्थ रूप में इसे कभी भी न समझ सकेंगे। इसे तो केवल वही अनुभव करेगा, जिसने अपने जीवन में एक-आध बार कभी नमस्कार-भेंट किया होगा, उस नारायण के प्रति नमो-निवेदन किया होगा।

यह तो घर है प्रेम का, ख़ाला का घर नाहीं।
सीस दक्षिणा जो धरे, सो बैठे घर माहीं॥

नमस्कार उपयोगितावाद का एक वैदिक रूप है। प्रत्येक वस्तु का सदुपयोग ही हो। तुच्छ से तुच्छ और बुरी से बुरी समझी जाने वाली वस्तु का भी सदुपयोग ही हो। किसी का भी दुरुपयोग न हो। प्रत्येक पदार्थ और व्यक्ति को उचित महत्व प्रदान किया जाये। जीवन को इस उपयोगितावादी सांचे में ढाला जाये। यह नमस्कार-क्रिया का एक रहस्य है।

जब-जब भी आप दिन में किसी को मिलें, अथवा जब-जब भी प्रथम बार मिलें, तो इससे पूर्व कि वह कुछ बोले, आप उसे यह विश्वास दिला दें कि आपकी भुजाओं में जितना बल है, उस सम्पूर्ण बल के साथ, आपके हाथों में जितनी क्षमता है, उस सम्पूर्ण क्षमता के साथ, आपके मस्तिष्क में जो ज्ञान है, उस सम्पूर्ण ज्ञान के साथ, आपकी दृष्टि में जो दर्शन-शक्ति है, उस सम्पूर्ण दर्शन-शक्ति के साथ, आपके हृदय में जो विशालता और सहृदयता है, उस सम्पूर्ण विशालता और सहृदयता के साथ, आपके शरीर में जो सामर्थ्य है, उस सम्पूर्ण सामर्थ्य के साथ, आप सच-मुच ही उसका आदर करते हैं। सब अच्छे कामों में आप सदा ही उसके साथ हैं। यह वैदिक नमस्कार-पद्धति है। यह सभी शिष्टताओं की जननी है।

सब का भला हो। सब का लाभ हो। सब सुख पावें। सब के रोग मिटें। सब के अभाव हटें। सभी अपने-अपने श्रेष्ठ लक्ष्य को प्राप्त करें। भय, शोक, रोग, अभाव, ताप और दुष्ट जन कोई भी किसी मनुष्य को कभी भी न सतावे। कभी भी पाप-कर्मों में लिप्त न हों, सभी पुरुषार्थी, सहृदय, संवेदनशील और सुकर्मी बन कर सहयोगमय जीवन व्यतीत करें। यह एक तीसरा अर्थ नमस्कार का है।

लोक-लोकान्तरों का नमस्कार क्या है? उन-उन का प्रभु की आज्ञा के अनुसार अनुवर्तन वा परिभ्रमण। पञ्चमहाभूतों का संयोग, वियोग, आकर्षण और विकर्षण एवं उन का अपनी-अपनी परिधि में नियमपूर्वक प्रचलन यह उन का नमस्कार ही तो है। कोई इस विश्व यज्ञ के अद्भुत सौन्दर्य को देख सके, तो देखे। यह भेद में अभेद है। यह असहमत-सङ्गम है। प्रकृति नटी का अनन्त मुद्राओं में यह प्रभु के प्रति आत्म-समर्पण, अनुकरणीय है।

सांसारिक लोगों ने नमस्कार को चापलूसी और एक दूसरे को अनुचित बढ़ावा देने का साधन बना लिया है। कैसी विचित्र विडम्बना है? यह तो उचित नहीं है। हे भाइयो! दुष्टों, क्रूर-जनों और सङ्कीर्ण हृदय वाले लोगों की चापलूसी तुम क्या करते हो? यदि मन में कोई चाह है, तो महाप्रभु इन्द्र का ध्यान करो और उसके प्रति अपना-अपना नमस्कार अर्पित करो। वह अवश्य ही तुम्हारी मनोकामनाओं को पूर्ण करेगा।

उसे फजल करते नहीं लगती बार।
न हो उस से मायूस उम्मीदवार॥

दिखावे और हिसाब-किताब को रहने दो। सच्चे प्रेमी बनो।

प्रेम न जाने नियमव्रत, प्रेम न बुद्ध-व्यवहार।
प्रेम-मग्न जब मन भया, कौन गिने तिथिवार॥

वह इन्द्र केवलमात्र खड्ग-हस्त ही नहीं है। सोम का संवर्धन और दान भी वह करता है। अधिकारी जनों को आनन्दामृत के प्याले पर प्याले पिलाता है। मस्त बनाता है। उनके भय-ताप छुड़ाता है। वह उनके जीवन को एक अलौकिक मादकता, एक सुष्ठु-सौरभ, एक दिव्य-सुगन्ध, एक स्निग्ध-हास्य और एक मनोरम-सौन्दर्य से विभूषित कर देता है। प्रभु की कृपा से प्राप्त होने वाले उस आनन्द-रस को ही वैदिक भाषा में सोम कहा जाता है। सोम-पान वैदिक-जीवन का एक अत्यन्त गौरवपूर्ण शुभ कर्म है। मानव के पुरुषार्थ की पूर्णता के पश्चात् जब प्रभु की कृपा का आविर्भाव होता है, तब सोम-पान-याग भी अपनी सम्पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। आरम्भ में यह ठीक रहेगा कि मनुष्य किसी सुयोग्य सहायक को खोज ले। जब एक बार सूत्र हाथ में आ जाये, तब सावधानी से प्रभु को निज सङ्ग-सङ्ग जान कर और सर्वथा निर्भय होकर आगे बढ़े। बढ़ता ही चला जाये। डरने की बात नहीं। इस मार्ग पर एकाकीपन में ही अधिक कल्याण है। सङ्ग दोष और राग-द्वेष से पूर्णतया बचना चाहिये।

सोम में ही वह ओम् भी वर्तमान है। स + ओम् = सोम्। उसकी पहिचान में साधक कोई भूल न करे। अवति इति—ओम्। अर्थात् जो सब देशों, सब कालों, सब परिस्थितियों में सब का

रक्षक है, उसे ओम् कहते हैं। ओम् के इस रक्षक रूप की उपासना भक्तों के लिये बहुत अधिक लाभदायक है। उपासना की आरम्भिक भूमिकाओं में ही साधकों को ओंकारोपासना के चमत्कार दिखाई देंगे। अपने भक्तों का परित्याग तो प्रभु कभी करते ही नहीं। मैं-मन्ता वा अहंकारी जनों का-सा व्यवहार उसका नहीं है, वह तो प्रच्छन्न-सा रह कर ही सब के कार्य सँवारता है। उसे पहिचानने में वे प्रायः भूल कर जाते हैं, जिनका व्यवहार कच्चा है।

सब सों हिल मिल बोलिये, सब सों मिलिये धाय।
न जाने किस रूप में, नारायण मिल जाये॥

आओ हम भी अपने प्रियतम की सेवा में उपस्थित होकर अपने-अपने नमस्कार भेंट करें और अपने-अपने मनोरथ पूरे कर लें। हम तो उसके द्वार के सनातन भिक्षुक हैं।

साईं के दरबार में, वैरागी दो नैन।
मांगे दरस - मधूकड़ी, छके रहें दिन-रैन॥

प्रभु की दान-प्रणालियाँ

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं
यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो
यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१४॥

पद-पाठ

यः । सुन्वन्तम् । अवति । यः । पचन्तम् । यः । शंसन्तम् । यः । शशमानम् । ऊती । यस्य । ब्रह्म । वर्धनम् । यस्य । सोमः । यस्य । इदम् । राधः । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

शब्दार्थ :—(यः) जो (सुन्वन्तम्) आनन्दवर्धक रसों की वृद्धि करने वाली की और (यः) जो उन रसों को (पचन्तम्) पकाने वाले, उनका परिपाक करने वाले अर्थात् पाचक, समालोचक एवं उपभोक्ता वर्ग की (अवति) रक्षा करता है, (यः) जो (शंसन्तम्) स्तुति गायक, प्रशंसक की (यः) जो (शशमानम्) कार्य करने वाले, पुरुषार्थी की (ऊती) रक्षा करने वाला है, (यस्य) जिसका (ब्रह्म) वेद है,

(वर्धनम्) जिसका मन सब संवर्धन और विकास है, (यस्य सोमः) जिसका आनन्द है, (यस्य) जिसका (इदम्) यह सब (राधः) धन है, शोभा को धारण करने वाला ऐश्वर्य है, (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है।

भावार्थ :–जो भोजन के रसों और साहित्य के रसों का संवर्धन तथा परिपाक करता है, जो उन रसों का सेवन करने वालों का रक्षक है, जो स्तुति गायकों और प्रशंसकों का रक्षक और उत्साहवर्धक है, जो सब प्रकार के ज्ञान का आदि मूल, बड़े विस्तारवाला, उन्नति और विकास में सहायक और आनन्दस्वरूप है, यह शुभ गुणों से युक्त ऐश्वर्यमय विश्व जिसकी सत्ता और महत्ता का सूचक है, हे मनुष्यो ! वह इन्द्र है।

प्रवचन

जो कवि, गायक, सैनिक, लेखक, विचारक, प्रचारक, कृषक, पाचक, व्यापारी और अनेकविध अन्य सेवक वर्गों के सुख चैन की वृद्धि के लिये प्रयत्नशील हैं, भगवान् उनका रक्षक है। इन विभिन्न प्रकार के शिल्पियों के द्वारा प्रस्तुत किये जा रहे रसों का निरीक्षण, परीक्षण, सुधार, सम्पादन, समालोचन, व्यवहार, परिष्कार, व्यापार, प्रचार आदि जो लोग करते हैं, भगवान् उनका भी रक्षक है। और, जो निर्माण कुछ भी नहीं करते हैं, भगवान् उनका भी रक्षक है। चिऊंटी को कणभर और हाथी को मनभर

भोजन उसके अक्षय-भण्डार से निरन्तर मिलता रहता है। सुन्वन्न बनो। निर्माता बनो। रचना करो। उत्तम कर्म करो। ऐसे विधानों की प्रवर्त्तना करो, जिनसे अन्य कर्म योगीजनों को भी अपने अपने कर्त्तव्यों के पालन में सहयोग मिले। निर्माण कार्यों का महत्व बहुत अधिक है। निर्माता का पद बहुत ऊँचा है। ऊँचा पद तो सभी को भाता है; परन्तु निर्माण कार्य में होने वाली कठिनाइयों का विचार करके लोग हिम्मत हार देते हैं। यह बात ऐसी है कि मानो कोई माता प्रसव-पीड़ा से डर कर सन्तानोत्पत्ति का विचार ही त्याग दे। बहुत से व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जो असफलता की आशंका से कार्य का आरम्भ ही नहीं करते। कुछ आरम्भ तो कर देते हैं; परन्तु बाधाओं के आने पर अपने समारम्भ अधूरे ही छोड़ देते हैं। परन्तु जो प्रभु के कृपापात्र और उसकी उपासना में अनुप्राणित जन होते हैं, वे तो कार्य को सिद्ध और सफल करके ही दम लेते हैं। वे डट कर परिस्थितियों के साथ संघर्ष करते हैं, परिस्थितियों को अनुकूल बनाते हैं और किसी भी अवस्था में अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं होते।

निरीक्षक, परीक्षक, समालोचक, परिपाचक का पद भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। निरीक्षक, परीक्षक और समालोचक आदि के अभाव में तो निर्माताओं का पथभ्रष्ट होना, प्रमादी या धूर्त बन जाना, अथवा अनुत्साहित होकर निठल्ले बैठ जाना भी सम्भव है। निरीक्षक, परीक्षक, और समालोचक भी तो कुशल और सिद्धिप्राप्त ही होते हैं। अपनी पैनी दृष्टि से, अपनी अभ्यास लेखनी वा तूलिका से अपने कार्य-साधक उपकरणों से वे अपनी और दूसरों की निर्मित वस्तु के कलापक्ष को सजीवता, यथार्थता

प्रदान कर देते हैं। निरीक्षक, परीक्षक, समालोचक और परिपाचक बनो। जो स्वयं निर्माण नहीं कर सकता, वह किसी निर्माता का पथप्रदर्शन क्या करेगा? निरीक्षक होने के लिये पहिले निर्माता होना आवश्यक है। निरीक्षक और परीक्षक आदि का गौरवपूर्ण पद प्राप्त करने के लिये मनुष्य को अधिक योग्यता और अधिक साधना की आवश्यकता है।

स्तुति, प्रार्थना और उपासना का अनुष्ठान करो। शुभ गुणों से प्रीति करो। शुभ कर्म-कर्त्ताओं की प्रशंसा करो। शुभ कर्म-कर्त्ताओं को उत्साहित करो। झूठे-झूठे कलंक किसी के माथे पर न लगाओ। किसी के शुभ गुणों को, द्वेषवश दोषों के रूप में चित्रित न करो। निन्दक न बनो। जैसे चरपटी चाट शारीरिक स्वास्थ्य को नष्ट कर देती है, वैसे ही निन्दा की प्रवृत्ति मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को नष्ट कर देती है। आजकल निन्दा का प्रकोप एवं विस्तार बहुत अधिक बढ़ता जा रहा है। बाल, वृद्ध, स्त्री और पुरुष जिसे भी देखें, वही पर-निन्दा में निमग्न दिखाई देता है। हाय, मानव की यह कैसी हीन मनोदशा है? मनुष्य स्वयं उत्कर्ष को प्राप्त न करके उत्कर्ष को ही अपकर्ष सिद्ध करने का उलटा प्रयास कर रहा है। क्यों? अपनी तुच्छता, असफलता, अकर्मण्यता और सदोषता को छिपाने के लिये, तथा अपनी हीन-भावना की सन्तुष्टि के लिये। हे प्रभो! कृपा करो। इस पर—निन्दा रूपी महापातक से अखिल मानवता की रक्षा। आपकी कृपा से हम सभी मनुष्य परस्पर सहयोगी, कर्तव्य परायण और एक दूसरे के सच्चे प्रशंसक बनें।

बुरा जो खोजन मैं चला, बुरा मिला न मोय ।
जब मन खोजा आपना, मुझ से बुरा न कोय ।।

पुरुषार्थी बनो । पुरुषार्थी जन ही सफल मनोरथ होकर सच्चा मोद मनाते हैं । पुरुषार्थी जन ही संसार में सम्मान प्राप्त करते हैं । पुरुषार्थियों को ही लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । संसार में मनुष्य का पुरुषार्थ से बड़ा मित्र और आलस्य से बड़ा शत्रु दूसरा और कोई नहीं है । प्रारब्ध ? वह तो पुरुषार्थ का प्रतिफल ही है ।

पौरुष नहीं जिस पुरुष में, वह पुरुष पुरुषाकार है ।
पौरुष बिना उस पुरुष के, जीवन को शत धिक्कार है ।।

ज्ञानी बनो । ज्ञान का सम्पादन करो । जो व्यवहार में न आ सके, और अनुभूति का विषय ही न बन सके, वह तो ज्ञान नहीं, अज्ञान है । अज्ञान से बचो । मिथ्या वा अज्ञान एक ही बात है । मिथ्या ज्ञान और अविद्या के चार अंग हैं :—

* (१) नित्य को अनित्य समझना और अनित्य को नित्य समझना ।

(२) जड़ को चेतन और चेतन को जड़ समझना ।

(३) सुख को दुःख और दुःख को सुख समझना ।

(४) अपवित्र को पवित्र और पवित्र को अपवित्र समझना ।

वृद्धि करो । उन्नत बनो । एक से दूसरी, नित्य नई सफलता की ओर बढ़ते ही चलो । प्रगति करना तो मनुष्य का स्वभाव ही

* अनित्याशुचि दुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ।
[योग-दर्शन, साधन पाद, सूत्र ५]

है। यदि प्रगति की गति किसी कारणवश रुद्ध हो जायेगी, तो मनुष्य की अप्रगति अर्थात् अवनति आरम्भ हो जायेगी। मनुष्य निरन्तर एक सी ही स्थिति में ज्यों का त्यों खड़ा हुआ नहीं रह सकता। उसे आगे बढ़ना होगा या पीछे हटना होगा। अथवा दायें-बायें हट जाना होगा, यदि ऐसा न हो सका तो क्रूर काल-प्रवाह उसे कुचलता हुआ आगे बढ़ जायेगा।

सोम-रस का सम्पादन करो। सोम-रस का पान करो। जो आगे बढ़कर उठाले यह प्याला उसी का है। जो आगे बढ़कर उठाले यह सम्पूर्ण ऐश्वर्य उसी का है जो आगे बढ़कर उठाले यह सम्पूर्ण मुद-मंगल उसी का है।

प्रेम प्याला जो पिये, सीस दक्षिणा देय।
लोभी सीस न दे सके, नाम प्रेम का लेय॥
कामी, क्रोधी, लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति, वरन, कुल खोय॥

प्रभु के भण्डार में शारीरिक-भोजन, मानसिक-भोजन या आत्मिक-भोजन, किसी की कुछ भी कमी नहीं है। सभी के लिये सब कुछ है। जो अधिकारी हैं, जिनकी अभिलाषायें अपूर्ण हैं, वे आगे बढ़ें। प्रभु इन्द्र के दान सभी के लिये हैं।

[१५]

हम तेरे हैं

यः सुन्वते पचते दुध्र आचिद्
वाजं दर्द्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः
सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१५॥

पद-पाठ

यः । सुन्वते । पचते । दुध्रः । आ । चित् । वाजम् । दर्दर्षि । सः । किल । असि । सत्यः । वयम् । ते । इन्द्र । विश्वह । प्रियासः । सुऽवीरासः । विदथम् । आ । वदेम ॥

शब्दार्थ :—(यः) जो (दुध्रः) दुष्टता का निवारक और श्रेष्ठता का संवर्धक प्रभु (सुन्वते) उत्तम रसों का संवर्धन करने वाले जनके लिये (पचते) और उन रसों को पचाने, पकाने संस्कृत करने वाले जन के लिये (चित्) भी (वाजम्) बल, ओज, तेज, प्रभाव और अन्न को (आदर्दर्षि) सब ओर से प्रभूत मात्रा में प्रदान करता है । (किल) निस्सन्देह (सः)

वह (सत्यः) सत्य, सत्यशील, सत्यस्वरूप, अजर और अमर (असि) है। (इन्द्र) हे इन्द्र ! (विश्व ह) सब दिन (वयम्) हम (ते) आपके (प्रियासः) प्रेमी और (सुवीरासः) श्रेष्ठ, आज्ञानुवर्ती वीर बने रहें, और सदा ही (विदथम्) आपकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना-स्वरूप कर्म समूह का, वेद का (आवदेम) मनसा, वाचा, कर्मणा अनुष्ठान तथा प्रचार करें।

भावार्थ :–हे देवाधिदेव इन्द्र ! आप दुष्टों के दोष-निवारक और श्रेष्ठों के पालक, सद्गुण संवर्धक हैं। उपासना-धर्म-परायण जनों के एवं ललित कला प्रेमी कलाकारों और पारखी पुरुषों के प्रतिपालक और प्रेरक भी आप ही हैं। आप सत्यस्वरूप हैं आपके सम्पूर्ण गुण, कर्म, स्वभाव पूर्ण एवं अमोघ हैं। प्रभु जी ! हम पर ऐसी कृपा करो, जिससे कि हम सदा ही आपके आज्ञानुवर्त्ती बने रहें। और सदा ही शुभ कर्मों का अनुष्ठान करते हुए आ।की कृपा के पात्र बने रहें।

प्रवचन

जो निर्माताओं, वैज्ञानिकों, आविष्कारकों, कवियों, गायकों, उपदेशकों, शिक्षकों, सैनिकों, वितरकों, विभिन्न प्रकार के सेवकों और स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना की कलाओं में पारंगत साधकों को बल, ओज, तेज, प्रभाव और सफलता प्रदान करता है, वह इन्द्र है। यह हमने प्रकृति के निरीक्षण, परीक्षण, विश्लेषण और

गुरु के अनुशासन एवं शास्त्र के विचार के आधार पर भली प्रकार जान लिया है। प्रभु की सत्ता और महत्ता के विषय में अब कोई सन्देह, संशय, या तर्क-वितर्क अब हमारे मन में शेष नहीं रहा। विशेष योग्यता प्राप्त निरीक्षकों और समालोचकों आदि का रक्षक और बलवर्धक भी इन्द्र ही है। यह भी सुस्पष्ट है। देखने वालों ने देख लिया है और कहने वालों ने कह भी दिया है।

तेरी ही जात के चरचे हैं, गुल ओ बुलबुल में।
तेरी हस्ती का पता देती है, दुनियां तेरी ॥

सब प्रकार के दुष्ट गुण, कर्म, और स्वभाव का निवारक एवं दुष्टों का संहारक वह है। अज्ञान तथा अविद्या का वह असहिष्णु विरोधी है। वह श्रेष्ठों का सहायक और उन्नायक भी है उसकी सत्ता सर्वोपरि, सर्वगुणमयी, रसमयी, पूर्ण, अखंड, अकाट्य, अतर्क्य, व्यापक और विज्ञानमयी है। वह सफल ऐश्वर्य का भण्डार है। ज्ञानस्वरूप है, सर्वशक्तिमान् है, सबका माता, पिता, रक्षक, सहायक, शिक्षक, उन्नायक, एक और अद्वितीय है। यह सब भी भली प्रकार स्पष्ट हो चुका है। ये सूर्य, चन्द्र और तारे जिसकी महिमा के परिचायक हैं, वह इन्द्र ही तो है।

ये पशु, पक्षी, सागर, पहाड़, नदी, नाले, फल, फूल, पौधे, पत्ते; कन्द, मूल जिसने बनाये हैं, वह इन्द्र है। ये किरणों के तान-वितान, जिसने फैलाये हैं, ये लहरों की परम्परायें जिसने चलाई हैं? जो ध्वनि-तरंगों, ज्ञान-तरंगों का प्रसारक और अश्वों, गौओं, वृषभों एवं सम्पूर्ण सिद्धियों का प्रवर्त्तक एवं दाता है, वह इन्द्र है। यह अखिल विश्व उसकी महिमा का मूर्त्त रूप है।

संसार के सब स्वाद, मौज-मज़े तो फीके, फुसफुसे, विकारवान् और बहुत ही साधारण हैं। संसार के ये नाम तथा रूप वाले सभी पदार्थ तो नाशवान् हैं। हमारे ये नाम और रूप जो हमें बहुत ही प्यारे हैं, सभी हो-होकर मिट जाने वाले हैं। स्थायी नाम और यश तो बस एकमात्र भगवान् का ही है। एकमात्र भगवान् का नाम ही सत्य अर्थात् अजर, अमर है। उस विराट् पुरुष की तुलना में हमारी स्थिति एक तुच्छातितुच्छ रज-कण जैसी भी तो नहीं। आओ, हम सर्वतोभावेन आत्म-समर्पण करें। आओ, उसकी सेवा में हम भी अपना नमस्कार-निवेदन करें।

हे अखिल विश्व के उत्पादक, पालक, पोषक और महामहिम भगवन्! हम आपके अबोध बालक हैं। प्रभु जी! हमारी प्रार्थना को स्वीकार करो। आप हमारे हैं, हम आपके। यह प्रेम सम्बन्ध हमारे लिये बहुत ही गौरवपूर्ण तथा सन्तोषजनक है। हे प्रभो! निरन्तर हमारे हृदय मन्दिर में निवास करो, निरन्तर हमारा पथप्रदर्शन करो, हम आपकी कृपा से सदा आगे ही बढ़ें, ऊपर ही ऊपर उठें। किसी भी अवस्था में हमारा किसी भी प्रकार का पतन कभी भी न हो। आप हमारे हैं, हम आपके।

तेरी मेरी प्रेम - सगाई।
घर-घर नौबत और बधाई॥
तू है साथ हमारे हरदम।
भाग गये सब पाप, ताप, गम॥

हे प्रभो! ऐसी कृपा करो जिससे हम सब दिन आपके ही प्रेम-पात्र बने रहें। हम कभी भी आपके कोप-भाजन न बनें।

और कभी भी हम आपके कल्याणकारी आदेशों का उल्लङ्घन न करें। हम कभी भी उत्तम मर्यादाओं को न तोड़ें। हे देवाधिदेव! आपकी सत्ता का हम कभी विस्मरण न करें। हे प्रभो! आपके बल से बलवान् बन कर हम सदा ही आपके दर्शाये हुए प्रेम-पन्थ का अनुगमन करते रहें। आपकी कृपा से हम शुभकर्मी बन कर उत्तम यश को प्राप्त करें। कोई हमारा निन्दक न हो। हम किसी के निन्दक न हों। कोई हम से द्वेष न करे। हम किसी से द्वेष न करें। कोई हम से न डरे। हम किसी से न डरें। आपकी कृपा से हम सदा ही सात्विकता और पूर्ण-पवित्रता का अनुगमन करने वाले हों।

हे परमात्मन्! आपकी कृपा से हमारा जीवन यज्ञमय हो। हम त्यागी, तपस्वी, पुरुषार्थी, दृढ़व्रती, ब्रह्मचारी, वेदवादी, पूर्ण-भक्त और आपके सच्चे प्रेमी बन कर अपना-अपना जीवन सफल करने वाले हों। आपकी कृपा से हम धर्मवीर, धनवीर, कर्मवीर, प्रणवीर, रणवीर, धैर्यवीर शुभ-सम्पर्कों से युक्त और सत्यशील हों। हे दयानिधे! अखिल विश्व में सर्वत्र ही सुख और शान्ति बनी रहे। सभी प्राणी आपकी भक्ति का अनुष्ठान करने वाले हों।

श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" की
जीवन को सुखी बनाने वाली कुछ अन्य पुस्तकें

वैदिक - प्रवचन

दैनिक स्वाध्याय और सत्संगों में प्रयोग के लिये। २.२५

दृष्टान्त - मंजरी

पठन - पाठन और व्याख्यानों में सुनाने के लिये। २.००

श्रुति - सुधा

वेदों के तीन सौ छियासठ वचन अर्थ सहित। ०.२०

यम - नियम - प्रदीप

नैतिक - जीवन का पथ - प्रदर्शक। दूसरी बार। १.२५

कुलियात आर्य मुसाफिर

श्री पं० लेखराम जी की रचनाओं का अनुवाद। ६.००

मातृ-मन्दिर ०.५०, उर्मिल-मंगल ०.५०, शिक्षा-चाव्वनी ०.७५

नोट—डाक व्यय पृथक् होगा। अपना पता साफ लिखें।

मधुर - लोक

सम्पादक—राजपाल सिंह शास्त्री

सदाचार, वेदवाद, मनोविज्ञान और नव-निर्माण का मासिक-पत्र।
वार्षिक मूल्य —४.००, दो वर्ष का — ७.००, नमूना मुफ्त।

मधुर - प्रकाशन, आर्य समाज मन्दिर

सीताराम बाज़ार, देहली—६

स्वाध्यायोपयोगी साहित्य हमसे मंगाएँ

वैदिक-प्रार्थना	१.५०	मधुर सामान्य-ज्ञान	०.७५
वैदिक-युद्धवाद	१.००	वेद और विज्ञान	०.७०
जीवन-प्रभात	०.५०	स्वप्नदोष और उसकी चिकित्सा	०.२०
वैदिक-प्रवचन माधुरी	१.००	हित की बातें	०.१५
विदेशों में एक साल	२.००	दन्त-रक्षा	०.२०
मनोविज्ञान शिव संकल्प	३.५०	बन लो हीरे	१.००
वैदिक-गीता	२.५०	ब्रह्मचर्यामृत	०.२०
संस्कृतांकुर	१.२५	वैदिक-पथ	१.२५
छात्रोपयोगी विचारमाला	०.६५	कथा पच्चीसी	१.२५
वैदिक-धर्म-परिचय	०.६५	मधुर संस्कृत निबन्ध माला	१.२५
ब्रह्मचर्य-साधन १० भाग	४.४५	मधुर हिन्दी निबन्ध माला	०.८०
संस्कृत कथा-मंजरी	०.३१	बाल शिष्टाचार	१.५०
संस्कृत वाङ्मय का सं० परिचय	०.५०	विरजानन्द चरित	१.५०
हम संस्कृत क्यों पढ़ें ?	०.३७	वैदिक विवाह पद्धति	०.६०
हितैषी-गीता	०.७५	भोज प्रबन्ध	२.५०
श्रुति सूक्ति शती	०.२०	चाणक्य-नीति	१.२५
आसनों के व्यायाम	०.६०	विदुर-नीति	१.५०
नित्यकर्म विधि	०.२५	कबीर-शतक	०.३७
वैदिक मनुस्मृति	४.५०	उपदेश-मंजरी	२.५०
आर्य सिद्धान्त प्रदीप	१.२५	सत्यार्थ प्रकाश	२.५०
बनो लाल अनमोल	२.००	कर्त्तव्य-दर्पण	१ २५
ओंकार भजन माला प्रति सैंकड़ा	६.००	रण-भेरी	०.२५
आयुर्वेदीय द्रव्य गुण विज्ञान	१०.००	सचित्र रस-शास्त्र	१२.००

मधुर प्रकाशन, आर्य समाज मन्दिर

सीताराम बाजार, देहली-६

आवश्यक निवेदन

सब माताओं, बहिनों, पुत्रियों, स्त्री

कन्या पाठशालाओं और मातृ-शा

हितैषियों की सेवा में

विदित हो कि स्त्रियों और पारिवारिक जीवन
सरल सात्विक, शुद्ध और कम मूल्य के साहित्य की
है। महिलाओं के लिए कुछ उपयोगी जो थोडी-
लिखी गई हैं, प्राय: उन सब में किसी न किसी प्रस
मिलते हैं, जिनको देखकर सभी पिताओं, भाइयों
और संकोच का अनुभव होता है और वे उन पुस्तकों को अपनी पुत्रियों' बहनों और माताओं को भेंट में नहीं दे सकते। उनके पढ़ने की प्रेरणा नहीं कर सकते और पढ़ते हुए देख भी नहीं सकते। महिलाओं के लिए उपयोगी धार्मिक पुस्तकों की तो बहुत ही कमी है। इस कमी को देख कर ही हमने वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पंडित जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" जी से पवित्र ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध "मातृ-सूक्त" की बहुत सरल और क्रमबद्ध व्याख्या तैयार करवाई है, जो कि "मातृ-मन्दिर" नाम की पुस्तक के रूप में छपकर तैयार हो चुकी है। महिलाओं की इस विचार-पोथी की सर्वत्र सराहना हो रही है, यदि आपने इस पुस्तक को अब तक न देखा हो तो, शीघ्र मंगवाकर देखें, पढ़ें. और प्रेम-भेंट वा उपहार के रूप में वितरण और प्रचार करके यश के भागी बनें। कागज मजबूत, छपाई शुद्ध और सुन्दर एवं भाषा-शैली सरल और मनोवैज्ञानिक है। बहुत वर्षों के बाद यह ऐसी पुस्तक छपी है। प्रचार के लिए इसका मूल्य भी कम ही रखा गया है। एक प्रति ००'५० पैसे, दस प्रतियां ४'००, एक सौ प्रतियां ३५'०० रुपए। डाक-व्यय पृथक् होगा। अपना पता साफ लिखने की कृपा करें।

मधुर-प्रकाशन

आर्य समाज मन्दिर, बाजार सीताराम, दिल्ली-६